तेजोमयी चिनगारी छिपी हुई है सम्भव है कि वह कभी बल उठे और उनका भला या बुरा करे । अस्तु, अब हम पुनः सिलसिलेवार हत्तान्त लिखते हैं ।

"सूर्य और चन्द्रवंशके पुराने वैरी तक्षक, मुसलमान और दूसरे विदेशी लोग भारतका अधिकार प्राप्त करेंगे ।' भविष्यपुराण में कही हुई यही बात भारतके भाग्यमें लिखी थी । शाकद्वीपकी अक्षु और जाक्षरतीस नदियोंके किनारेके पौराणिक तक्षकोंके वीर वंशधर बाबरने आज वह भविष्यकी बात पूरी की । वह फरगनाराज्यका अधिकारी था । उसका राज्य जाक्षरतीसके दोनों ओर फैला था। वह स्थान बहुत प्रसिद्ध है । जितोंकी रानी सुन्दरी तौमीरी वहीं रहती थी । बड़े बड़े वीर वहां पैदा हुए थे । जिन जितों और अश्वोंके वंशधरोंने एक समय समस्त यूरोप और एशियाके राज्योंको पददलित कर दिया था वे वहांके पहाड़ी स्थानों से निकलकर संसारमें चारों ओर फैल गये थे । एक समय भारतके उत्तर पश्चिम प्रदेशमें उनका झण्डा उड़ रहा था; उनके प्रसिद्ध एटिला और एलारिक आदि वीरोंने बालटिकसे मेडिटरेनियन समुद्रतक सब देशोंमें हलचल मचा दी थी । इन लोगोंकी वीरताका अनुमान करनेसे इनके देशकी महिमा आपसे आप समझमें आजाती है । इनमेंसे अधिकांश वीरोंने दूसरे राज्योंपर आक्रमण करके विजय प्राप्त करनेके लोभसे अपना देश छोड़ा था; परन्तु बाबर उपद्रवमें पड़कर इच्छा न रहते भी देशके बाहर निकलनेको विवश हुआ था । तथापि इससे उसका भाग्य खुल गया और केवल कुछ कम दो सहस्र सिपाहियोंकी सहायतासे वह देहलीके सिंहासनका अधिकारी हो गया ।

फरगनाका अधिकारी बाबर सब बातोंमें राणा सांगाके समान था । सांगाकी तरह वह भी सदा विपत्ति भोगता रहा और इससे उसने परिणामदर्शिताकी शिक्षा पाई । यद्यपि सांगाकी अपेक्षा उसका जीवनवृत्तान्त अधिक विचित्र है तथापि वह दूसरोंकी तरह सदैव खूब सोचकर काम करता था । अपनी वीरता और तेजस्विताके घमण्डमें पड़कर उसने कभी जल्दी या नासमझी नहीं की । सन् १४९४ ई०में वह फरगनाके बड़े राज्यका अधिकारी हुआ । उस समय उसकी उमर केवल १२ वर्षकी थी । इतनी छोटी उमरमेंही उसके भविष्य वीरचरित्रका परिचय मिल गया। राज्य पानेके चारही वर्ष बाद अनेक मुसलमान अधिकारियों

को परास्त करके उसने समरकन्द पर विजय * प्राप्त की । इसके दो वर्ष बाद समरकन्द उसके हाथसे निकल गया पर उसने फिर उसे प्राप्त किया । इस प्रकार सम्पद् विपद् हार जीतसे वीरवर बाबरकी जीवनी भरी हुई है। कभी तो वह आक्सस के किनारेके प्रधान प्रधान देशोंका अधिकारी हो जाता और कभी निकाला जाकर हारकर प्राण बचानेके लिये दूरदेशको भागता। कभी उसे अकेले तलवार खींचकर लड़ना पड़ता और कभी वह पराजित और पीड़ित होकर अरक्षित तथा निस्सहाय अवस्थामें देश देशान्तरोंमें भागनेको विवश होता। एक बार उसने अपने पांच प्रचण्ड शत्रुओंको एकसाथही मारा था। पर फिर भी कुछ फल नहीं हुआ । ज्यों ज्यों समय बीतता गया त्यों त्यों उसके शत्रु कठोर होते गये। आखिर बचावका कोई दूसरा उपाय न देखकर लाचारीसे उसने फरगना राज्य छोड़ दिया और उदासभावसे हिन्दूकुश पर्वतमाला छोड़कर सन् १५१८ ई० में सिन्धुनदके पूर्व किनारे पर आश्रय लिया। इसके बाद काबुल और पञ्जाब प्रदेशके बीचमें किसी प्रकार दुःख कष्टमें ७ वर्ष बिताकर अपने उद्धारके उपाय ढूंढ़ने लगा । जो लोग उद्योगी और उद्यमशील होते हैं वे विपत्तियोंकी परवा नहीं करते, एक नहीं सहस्रों विपत्तियां भी उनका कुछ नहीं बना सकतीं, और अन्तमें अपने पुरुषार्थसे सब विपत्तियों और बाधाओंको दूर कर वे सुखी होते हैं। बाबर एक बादशाहका लड़का था—स्वयं बहुत बड़े राज्यका अधिकारी रह चुका था; आज राज्यसे अलग होकर स्वदेशके बाहर निराश्रित और निस्सहायावस्थामें दूर विदेशमें वह रहता था। उसकी सब आशाएँ लुप्त हो गई थीं, परन्तु तौभी उत्साह और उद्यमको उसने क्षणभरके लिये भी नहीं छोड़ा था। दो दो चार चार करके धीरे धीरे बहुतसे सैनिक उसके पास इकट्ठे हो गये। इसके बाद क्रम क्रमसे अपनी उन्नतिका मार्ग चौड़ा करके उसने देहलीके अधिकारी इब्राहीम लोदी पर आक्रमण कर दिया और सौभाग्यवश विजयी हुआ । देहलीका अधिकारी इब्राहीम लड़ाईमें मारा गया, —उसकी सेनाएँ मारी और भाग गई। तब देहली और आगराके निवासियोंने नगरके द्वारोंको खोलकर उसका स्वागत किया । कदाचा

* 'विजय' शब्द संस्कृतमें पुंलिङ्ग है पर हिन्दी भाषाके व्यवहारके अनुसार स्त्रीलिङ्गमें लिखना पड़ा।

विधान परमेश्वरकी यह असीम कृपा देखकर उसको स्वयं आश्चर्य हुआ और कृत-ज्ञता तथा भक्तिके साथ वह बोल उठा—"ऐ खुदावन्देताला, यह फतह मेरी नहीं है बल्कि तेरीही है, तेरीही शफकतकी बदौलत यह नसीब हुई है।"

देहली पर विजय प्राप्त करनेके एक वर्ष बाद उसने वीरवर संग्रामसिंहके विरुद्ध अपनी सेना परिचालित की। इस बार एक बराबरके शत्रुसे उसकी लड़ाई हुई। इसके पहले जिन जिन वीरोंसे लड़नेका काम उसे पड़ा था उनकी अपेक्षा राणा संग्रामसिंह कहीं दृढ़ थे। यद्यपि बाबर भी स्वयं वीर पुरुष था और उसके सहायक तातारी सैनिक भी बड़े बहादुर थे, तथापि वीरवर संग्रामसिंहके आगे वे ठहर न सके। परन्तु जिस समय उसकी आशायें लुप्त हो चुकी थीं, उसके सैनिक घबराकर निरुत्साह हो गये थे, उसकी जोशभरी बातें और उपदेश निष्फल हो चुके थे, उस समय वीरतासे नहीं चतुराईसे नहीं किन्तु एक स्वदेशद्रोही विश्वास घाती कापुरुषकी सहायतासे वह बच ... । यदि उसे इस प्रकारकी सहायता न मिलती तो "पीलो नदी" * के किना. वह दलबलके सहित नष्ट हो जाता और उसके सिरका शानदार ता.. स्यारों और कुत्तोंके पांवों तले लुढ़कता फिरता। यह वह समझ गया था और .सीसे दु:ख तथा निराशाके साथ उसने कहा था—"इस मुसीबतके वक्तमें हिम्मत बँधानेवाली बातें कहनेवाला क्या एक भी शख्स नहीं है?"

सीकरीके † लम्बे चौड़े मैदानमें बाबर और संग्रामसिंहकी सेनाओंका सामना हुआ। राजस्थानके प्राय: सब क्षत्रिय राजे संग्रामसिंहकी सहायताके लिये उनके साथ थे। संवत् १५८४ ‡ (सन् १५२८) में कार्त्तिक कृष्णा पञ्चमीको कनवा नामक स्थानमें बाबरके १५०० तातारी सैनिकोंको उन्होंने घोर रूपसे पराजित किया

* "पील नदी' बीनाके पास है। इसीके किनारे बाबरको सेनाएँ ठहरी थीं

† आजकल यह स्थान "फतहपुर सीकरी" के नामसे प्रसिद्ध है। यह आगरे से १० कोस दक्षिण ओर है। इसके पासके 'कनवा' स्थानमें बाबर और सांगा लड़े थे। यह लड़ाई फतहपुर सीकरीकी लड़ाईके नामसे प्रसिद्ध है।

‡ बाबरकी जीवनीमें लिखा है कि कनवाकी लड़ाई ११ वीं फरवरी १५२७ को हुई थी।

प्राय: सब मारे गये; जो दो चार भागकर बचे उन्होंने आकर सब हाल बाबरसे कहा; बाबर यह सुनकर बहुत घबराया और उसके सैनिक एकदम निराश हो गये; अतएव बचावके लिये अपने पड़ावके चारों ओर खाईं खुदवाकर वह चुपचाप सावधानीसे बैठा रहा। इन डरे हुए सैनिकोंकी सहायताके लिये जो दूसरा सैन्य-दल आया वह भी राणा सांगासे पराजित होकर भाग गया। विजयी राजपूतोंने इन भागे हुए सैनिकोंका पीछा किया और उनमेंसे अधिकोंको पकड़कर मार डाला। बाबर बड़े सङ्कटमें पड़ा; पर वह तनिक भी हतोत्साह नहीं हुआ। सदा विपद् और सङ्कटमें पड़े रहनेके कारण वह धैर्य और सहनशीलता अच्छी तरह सीख गया था और किस समय कैसा उपाय करना चाहिये यह भी वह जानता था। इस समय भी उपस्थित विपत्तिसे छुटकारा पानेके लिये उसने अभ्यस्त धैर्य और गम्भीरताका अवलम्बन किया और तुरन्त उचित उपाय सोच लिया। अपने पड़ावके चारों ओर बड़े बड़े बांध बंधवाकर उसने उनपर बराबर तोपें रखवा दीं। परन्तु उस समय वह किसी प्रकार कृतकार्य नहीं हो सका; उसके भग्नोत्साह सैनिक उत्साहित नहीं हुए। जिस ओर वह देखता था उधरही उसे विपत्तियोंकी डरावनी मूर्त्तियां दिखाई देती थीं, उधरही राणा सांगाकी चढ़ी हुई आंखें उसे डराती थीं। एक तातारी ज्योतिषीने उससे यह भी कहा था कि "जिस समय मङ्गल ग्रह पश्चिम ओर होगा उस समय जो दल उसको विपरीत दिशासे आवेगा वही हारेगा।" सो जान पड़ता था कि ज्योतिषीकी गणना सफल हुआ चाहती है और तातारी सैनिक एकदम नष्ट हुआ चाहते हैं! बाबर बहुत चिन्तित हुआ। ज्योतिषीकी भविष्यगणना पर वह जितनाही विचार करता उतनीही अधिक उसे चिन्ता होती। कहां फरगना राज्य—कहां देहलीका सिंहासन—कहां उसकी आशाकी शान्त मूर्त्ति! क्या यह आशा उससे छूट सकती थी? क्या उसका इतना यत्न इतना उद्यम और परिश्रम निष्फल जाता?—बाबर किसी प्रकार वीरवर संग्रामसिंहका मुकाबला न कर सका, किसी उपायसे उसके सैनिक उत्साहित नहीं हुए। उसके दुःखकी सीमा न रही। इस लाचारीकी अवस्थामें पन्द्रह दिन बीते, पर कुछ न हुआ, तब बाबरने तुच्छ मनुष्यशक्तिका भरोसा छोड़कर ईश्वरीयशक्तिसे सहायता लेनेके लिये अपने पापोंका प्रायश्चित्त करनेकी प्रतिज्ञा की।

वह प्रायश्चित्त जिस रीतिसे हुआ उसका पूरा पूरा हत्तान्त उसकी जीवनीमें बड़ी सुन्दर रीतिसे लिखा है †।

प्रायश्चित्त करके बाबरने सोचा कि अब मतलब सिद्ध हो जायगा; पर ऐसा नहीं हुआ, वरन् एकदम उलटी बात हो गई। 'अब शराब नहीं पीऊँगा" यह

---

† बाबर अपनी जो जीवनी स्वयं लिख गया है उसमें इस विषयमें जो बात लिखी हुई है उसका हिन्दी अनुवाद हम नीचे प्रकाशित करते हैं—

"९३३ हिजरीमें पहली जेमादीके तेरहवें दिन, सोमवारको, मैं घोड़े पर सवार होकर अपनी फौज देखने चला। रास्तेमें मुझे एक विशेष चिन्ताने आ घेरा। इससे पहले मैं प्रतिज्ञा कर चुका था कि जो बातें हमारी मजहबी किताबोंसे विरुद्ध होंगी उनमें हाथ न डालूंगा और अपने किये हुए पापोंके लिये प्रायश्चित्त करूँगा; पर वह प्रतिज्ञा आजतक न हो सकी थी;—इसलिये मैं आपही आप कहने लगा,— (फारसीकी कविता)

"रे मन, तू और कबतक पापका सुख भोगता रहेगा ?
अनुताप कड़वा नहीं है;—उसका स्वाद ले।"

(तुर्की कविता)

"अरे मूर्ख, पापमें पड़कर कितना कलुषित हुआ !
निराशामें पड़ा पड़ा कितना सुख तुझे मिला !
कितने दिनोंतक तू ऐय्याशीका गुलाम बना रहा !
तेरे जीवनका कितना समय बरबाद गया !
आ,—पवित्र धर्मकी ओर हम यात्रा करें,
ताकि मरनेके बाद तुरन्त मुक्ति मिले।
वह मुक्ति पानेके लिये जो मनुष्य अपना—
जीवन विसर्जन करनेकी प्रतिज्ञा करता है,
वही बड़ा है और परम पद पाता है।
अतएव, ऐ मूढ़ मन, उसके पानेके लिये सब
बुरी भोग वासनाओंको त्याग दे, और,
तेरे जितने कलुषित कर्म्म हों उन्हें छोड़।"

कहकर उसने प्याला जो जमीन पर पटका तो उसके सैनिक और भी उत्साहित हो गये। किसी प्रकार वे युद्धमें आगे नहीं बढ़े। अन्तमें उनको उत्साहित करनेके लिये बाबरने मुसलमानी धर्मकी दुहाई दे देकर उनको उभारनेका यत्न करना आरम्भ किया। यद्यपि वे हताश हो गये थे, पर बाबरकी ओजभरी वक्तृता और साहस दिखानेवाली बातोंसे उनको कुछ कुछ उत्साह हुआ। अब बाबरने

"इस तरह कुकर्मोंसे दूर होकर मैंने प्रतिज्ञा की कि आजसे कभी शराब न छूऊँगा। इसके बाद लोगोंको आज्ञा दी कि मदिरा पीनेके जितने सोने चांदी या शीशेके बर्तन हों सब लाये जावें। उनके आने पर उनको टुकड़े टुकड़े करा डाला और हृदयको पवित्र करके मदिरा पीना एकदम छोड़ दिया। फिर कहा, 'इन सोने चांदीके बर्तनोंके टुकड़ोंको फकीर तथा गरीब लोगोंमें बांट दो।' आज्ञा पातेही नौकरोंने ऐसाही किया। सबसे पहले जिस व्यक्तिने प्रायश्चित्त करके पापोंसे अलग होनेमें मेरा अनुकरण किया उसका नाम असस है। ' मेरी तरह इसने भी दाढ़ी न कटानेकी प्रतिज्ञा की। उसी रात तथा उसके दूसरे दिन अमीर उमरा दरबारियों तथा सेनामेंसे भिन्न भिन्न रुचिके कोई ३०० लोगोंने मेरे समान प्रायश्चित्त और चित्त शुद्ध करनेका प्रण किया। मेरे पास कुछ मदिरा थी, मैंने उसे जमीन पर फेंक दिया और बाबादोस्त जो थोड़ीसी लाया था उसमें नमक मिलाकर उसका सिरका बनानेको कहा। जिस जगह वह मदिरा गिराई गई थी वहां पत्थरका एक खोखला स्तम्भ और गरीबखाना बनवानेकी मैंने आज्ञा दी। ९३५ हिजरीमें मुहर्रमके दिनोंमें ढोलपुरसे सीकरी आते समय जब मैं गवालियर देखने गया था तब मैंने देखा था कि वह खम्भा बनकर तैयार हो गया है। —कुछ दिन पहले मैंने प्रतिज्ञा की थी कि यदि राणा संग्रामसिंहको लड़ाईमें विजय प्राप्त करूंगा तो मुसलमानों परसे स्टैम्प-कर उठा दूंगा। जब मैं प्रायश्चित्त करने लगा तब मुहम्मद सर्बन और शेख जिमने मुझे इस बातकी याद दिलाई। मैंने उनसे कहा, 'इसकी याद दिलाकर आपलोगोंने बहुत अच्छा किया।' मेरे राज्यमें जितने मुसलमान हैं मैं आजसे उनसे स्टैम्प-कर नहीं लूंगा।' यह कहकर अपने कार्य्याध्यक्षको बुलाया और हुक्म दिया कि यह फर्मान सब जगह पहुँचा दिया जावे।" (बाबरकी स्वलिखित फारसी जीवनीसे)

देखा कि सैनिकोंका डर कुछ कम होता जाता है, तब उसने हरएकके हाथमें कुरानकी एक एक पोथी देकर गम्भीर स्वरमें कहा –"कसम खाओ, कुरान छूकर खुदाके नाम पर वायदा करो कि या तो लड़ाईमें फतह हासिल करेंगे या वहीं मैदानमें जान दे देंगे।" † सबके हृदयोंमें उत्साह भर गया;—सबने बाबरके स्वर में स्वर मिलाकर कसम खाई कि ऐसाही होगा। सैनिकोंका उत्साह देखकर

† बाबरने अपनी जीवनीमें इस विषयमें निम्नलिखित बात लिखी है,—

"इससे पहले मैं कह चुका हूं कि ऊपर लिखी घटनाके कारण उच्च और नीच सभी डर और घबराकर निरुत्साह हो गये; किसीके मुंहसे पुरुषकी सी साहस भरी बात नहीं निकलती थी; कोई ज़रा भी उत्साह वा उत्तेजना नहीं दिखाता था। जिन वज़ीरोंका प्रधान कर्तव्य अच्छी अच्छी सलाहें देना है वे वज़ीर, और जिन अमीरोंके लिये बड़ी बड़ी जागीरें नियत थीं वे अमीर, ऐसे हो गये थे कि उनमें कुछ भी साहस दृढ़ता वा पुरुषत्वका लेश नहीं पाया जाता था। परन्तु खलीफा नामक एक व्यक्तिने आरम्भसे अन्ततक सब बातोंका ठीक प्रबन्ध करनेके लिये अविश्रान्त परिश्रम और उद्योग किया। यद्यपि उसका उद्योग पूरी तरह सफल नहीं हुआ तथापि उसका उद्यम और उसकी चेष्टा अवश्य प्रशंसनीय है। आखिर सबको एकदम निराश देखकर मैंने चित्त स्थिर करके कुछ उपाय सोचना आरम्भ किया। उमरा और अपने सैनिकोंको अपने पास बुलाकर मैंने उनसे कहा, 'माननीय सज्जनो और सैनिको, इस संसारमें जो आता है उसे मृत्युके आगे सिर झुकाना पड़ता है। जब हमलोग इस अनित्य संसारसे चले जायेंगे और जीवजन्तु न रहेंगे तब उस प्रलयसे बचानेवाला परमेश्वरके सिवा दूसरा कोई न होगा। यह दुनिया जीवनके एक उत्सवका स्थान है; इस उत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये जो लोग आते हैं वे इस उत्सवके समाप्त होनेसे पहलेही यहांसे चले जाते हैं। यह संसार दुःखके निवासस्थान और ध्वंसके मुसाफिरखानेके समान है, अनन्त यात्राओंसे निकलकर जो कोई यहांतक पहुंचता है अवश्य उसे एक दिन विदा होना पड़ता है। परन्तु क्या इससे यह समझना चाहिये कि मनुष्यके जीवनका कुछ भी उद्देश्य नहीं है? क्या कलङ्क और बदनामीमें डूबकर जीवन बिताना चाहिये? जानवरोंकी तरह इन्द्रिय सेवन करते हुए सदा आलस्यमें पड़े रहनेहीके

बाबरने विलम्ब नहीं किया; उसने तुरन्त कूच कर दिया और बेरोक टोक एक कोस वह आगे बढ़ गया। पर इससे आगे न आ सका। झुण्डके झुण्ड राजपूत सैनिक तोपोंके आगे आ आकर उसके तातारी सैनिकों पर आक्रमण करते थे। अतएव लाचार होकर उसे उसी जगह अपने डेरे खेमे खड़े करने पड़े; परन्तु सीमाकी लकड़ियों † और तोपोंको एकसाथ बांध देनेके कारण उसके पड़ावके

लिये क्या करुणामय परमेश्वरने मनुष्योंको इस जगत्में भेजा? कीर्ति और सम्मान मर्यादाका क्या हमलोग भोग नहीं करने पावेंगे? विचार करके देखिये कि कलङ्क और अपयशसे दबे हुए मस्तकको लेकर जीवन बितानेकी अपेक्षा सम्मान और प्रतिष्ठाका स्वर्णमुकुट सिरपर रखे हुए जीवन परित्याग करना कितना बढ़कर और प्रशंसनीय है। यह देह नश्वर है; इस संसारमें कोई किसीका नहीं; एकमात्र मृत्युके सब अधीन हैं। यश, मान, ज्ञान, गर्व, सब एक दिन न रहेंगे;—सभी एक न एक दिन कालके गर्भमें विलीन हो जायंगे। यदि मरना है तो यश पाकर क्यों न मरें, जिससे कि हृदयमें किसी प्रकारका दुःख न रह जाय। ओह! यह जीवन चला जाय कुछ परवा नहीं; इसकी कुछ आवश्यकता नहीं। कलङ्कको मिटाकर यशके साथ यह देह त्याग करो।

"दयावान् ईश्वर हमलोगों पर सदासे प्रसन्न है। जब उसने हमको इस घोर सङ्कटमें डाला है तब निस्सन्देह विजय प्राप्त करके गौरवके साथ हम इस संकटसे निकलेंगे। मैं अपने लिये कहता हूं कि शत्रुओंको उनके कामोंका उचित फल चखा दूंगा;—यदि ऐसा न कर सका तो वहीं प्राण दे दूंगा। यह भी अच्छा है; इससे संसारमें सदा नाम बना रहेगा। तो आइये हमलोग ईश्वरका नाम लेकर प्रतिज्ञा करें कि चाहे जो कुछ हो लड़ाईमें शत्रुओंको पीठ नहीं दिखावेंगे। जबतक इस देहमें प्राणका छोटसे छोटा अंश भी रहेगा तबतक अपने उद्योगमें कृतकार्य होनेके लिये कोशिश करनेसे कभी न हटेंगे"—मेरी यह बात सबने स्वीकार की और हाथोंमें कुरान लेकर कसम खाई। अन्तमें हमारा मतलब सिद्ध हुआ जिसकी खबर तुरन्त चारों ओर फैल गई।"

† लड़ाईके समय सेनाके पड़ावके चारों ओरकी सीमा बांध रखनेके लिये जो लकड़ियां काममें लाई जाती हैं, उन्हींके विषयमें इस स्थानमें लिखा गया है।

चारों ओरकी रक्षाका प्रबन्ध न हो सका । अतएव उसे अनेक प्रकारकी असुवि-धाएँ हुईं; अपनेको वह निश्चिन्त न कर सका;—परन्तु उसके सौभाग्यसे वीरवर सांगाने इस अवस्थामें उसपर आक्रमण नहीं किया । कष्टमें पड़े हुए शत्रु पर आक्रमण करना उन्होंने नीतिविरुद्ध समझा; परन्तु इससे उन्हींको बड़ी हानि हुई। बाबरको कष्टमें जानकर वे जितनाही विलम्ब करने लगे उतनाही वह बलवान् होता गया । यदि सांगाके सैनिक वीरधर्मका पालन करते, यदि अपने स्वा-मीकी तरह उनमें स्वदेशप्रेम होता, तो राजपूतोंकी किसी प्रकारकी हानिकी सम्भावना नहीं थी; परन्तु दुर्भाग्यसे बात एकदम उलटी थी । उदारहृदय राणा सांगा अपने सैनिकों और सामन्तोंके मनका हाल न जान सके; वे न पहचान सके कि उनको केवल धन और भूमिका लोभ है। इसीसे उन्होंने उनपर विश्वास किया । उनको दृढ़ निश्चय था कि शत्रु चाहे सौगुना प्रबन्ध करके आवें, राजपूत वीर अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंसे उनसे लड़नेको तैयार हो जावेंगे। इसी विश्वास पर उन्होंने धोखा खाया। यही विश्वास करके वे उत्साहके साथ बैठे समयकी प्रतीक्षा कर रहे थे इतनेमें सन्धिका प्रस्ताव लिये हुए बाबरके यहांसे एक दूत उनके यहां आया। राणा सांगाने उसे आदरपूर्वक अपने यहां स्थान दिया; परन्तु उसके आनेका ठीक कारण वे न समझ सके। जब दूतने सन्धिका प्रस्ताव उपस्थित किया तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। इस बातका उन्हें कभी ध्यान भी नहीं हुआ था कि बाबर सन्धि करना चाहेगा। मुसलमानदूतसे उन्होंने पूछा,—"आपके बादशाहने किस किस नियमसे सन्धिकी प्रार्थना की है?" दूतने नम्र शब्दोंमें उत्तर दिया—"उन्होंने इस बारेमें सब बातें आपही पर छोड़ दी हैं।" शिलादित्य नामक एक तुआर राजपूत रायसीनका शासनकर्त्ता था; संग्रामसिंह उसे बहुत चाहते थे और आवश्यक कामोंके समय उससे सलाह ले लिया करते थे । इस सन्धिकी प्रार्थना आने पर भी उन्होंने उसे बुलाया और पूछा कि किन किन नियमोंसे सन्धि हो सकती है ? बहुत तर्क वितर्कके बाद अन्तमें यह स्थिर हुआ कि देहली और उसके अधीन सब राज्य बाबरके अधिकारमें हो रहें और, बीनाके पाससे बहनेवाली 'पीलखाल' मुगल और मेवाड़राज्यके बीचकी सीमारेखा समझी जाय; इसके सिवा बाबर राणाको हर साल कुछ निश्चित कर दे।—बाबरके जीवन-

चरितमें यह वृत्तान्त नहीं है; हमने इसे अन्यग्रन्थोंसे संग्रह करके लिखा है; इसलिये कदाचित् लोग इसको सच न समझेंगे; परन्तु बाबर उस समय ऐसे सङ्कटमें था और हरएक बातका परिणाम सोचकर वह जिस सावधानीसे काम करता था उससे यह बात अनायास समझमें आ जाती है कि अपने बचावके लिये लाचार होकर उसने सन्धि करना चाही थी। परन्तु दुःखकी बात है कि वह सन्धि स्थिर न रह सकी। एक स्वदेशवैरी सजातिद्रोही विश्वासघातकके कारण स्थिर होनेसे भी पहले वह टूट गई। वह स्वदेशद्रोही विश्वासघाती वही शिलादित्य था जिसका नाम अभी हम ऊपर लिख चुके हैं और जो राणा सांगाको बहुत प्रिय था।

बाबरने जिस सन्धिकी प्रार्थना की वह स्थिर न रह सकी। दोनों सेनाएं फिर लड़ाईके लिये तैयार हुईं। १६ वीं मार्चको युद्धका डङ्का बजा और बड़ी वीरताके साथ आगे बढ़कर राजपूतोंने तातारी सेनाके दाहिने भाग पर आक्रमण किया। बहुत समयतक दोनों दलोंमें घोर युद्ध हुआ। घोड़ोंके हिनहिनाने, हाथियोंके चिग्घाड़ने और सैनिकोंके चिल्लानेसे मानों बार बार रणभूमि कांप उठती थी। रह रहकर गोलोंके छूटनेके शब्दसे मानों आकाश फटा चाहता था! तोपोंसे निकलकर धुआं चारों ओर फैल गया था जिससे एक प्रकारका अन्धकार हो गया था। उस अन्धकारको भेदकर तोपके गोले विकट वज्रोंकी तरह सनसनाते हुए राजपूती सेनाको ओर जाते थे। उनके गिरकर फटने पर न जाने कितने सुयोग्य शस्त्रनिपुण राजपूत वीर कहांसे कहां चले जाते थे!—इतने पर भी राणा संग्रामसिंहका उत्साह कुछ कम नहीं हुआ। अनेक वीरोंके मारे जाने पर भी वे शत्रुओंके व्यूहमें घुसकर आगे बढ़ते गये। धीरे धीरे लड़ाई और भी विकट हो गई। राणाजीने शिलादित्यपर विश्वास करके सैन्यके आगेके भागकी रक्षाके लिये उसे नियत किया था। उनको खूब निश्चय था कि शिलादित्य शत्रुओंको पराजित करनेमें अपनी शक्ति भर उद्योग करेगा। विशेषकर आरम्भमें तातारी सैनिकोंके विरुद्ध उसने जैसी वीरता दिखाई थी उससे राणाका विश्वास उसपर और भी जम गया था। पर परिणाम बुरा हुआ! दुष्ट शिलादित्य देखते देखते दलबलके सहित बाबरकी सेनामें आ मिला! तातारियोंने ज़ोरसे चिल्लाकर जयध्वनि की। फिर तोपें आग उगलने लगीं;—फिर सारा आकाश धुएँसे अन्धकारमय हो गया!

राणा सांगाका हृदय सहसा कांप उठा ! धुएंके जरा हटने पर उन्होंने आश्चर्य और दुःखके साथ देखा कि विश्वासघाती शिलादित्य देखते देखते बाबरकी ओर जा मिला है !—उनका हृदय फटने लगा; थोड़ी देरके लिये उनकी आंखोंके आगे बिलकुल अन्धेरा छा गया !

हाय ! विश्वास करनेका यह फल हुआ ! जिस राणा सांगाने विश्वास करके उस दुष्टको सेनाकी सबसे बड़ी अफसरी सौंपी थी उन्हींके साथ उसने विश्वासघात किया ! हा ! नराधम, दुष्ट, विश्वासघाती, पापी, स्वदेशद्रोही दुष्टने शत्रुओंका पक्ष लिया ।—बड़े क्रोध और दुःखमें भरे हुए राणाजी युद्धक्षेत्रसे चले गये । जो वीर उनकी सहायताके लिये आये थे वे सब सच्चे स्वदेशानुरागका परिचय देकर लड़ाई में वीरगतिको गये । डूंगरपुरके रावल उदयसिंह दो सौ वीरोंके सहित; सालुम्ब्राके रत्नसिंह तीनसौ चूंडावत सैनिकोंको लेकर; मारवाड़के राठौर राजपूत रायमल अपने दो नामी सेनापतियों खेतसिंह और रत्नको लिये हुए; अग्निकुल सरदार रामदास राव; झालाके जजो; प्रमारवीर गोकुलदास; मेवाड़के चौहान सरदार माणिकचन्द्र और चन्द्रभान तथा अनेक छोटे बड़े सरदार सैनिक और वीर पुरुष राणा सांगाकी सहायताके लिये आये थे । इनके अतिरिक्त दो मुसलमान अधिकारी भी उनके सहायक थे । एक देहलीके पूर्व अधिकारी इब्राहीम लोदीका पुत्र और दूसरा मिवातका अधिकारी हुसैनखां ।—ये सब वीर समरभूमिमें वीरता के साथ लड़कर वीरगतिको गये थे । इनकी प्रचण्ड वीरता और साहसके आगे मुसलमानोंकी तोपें अनेक बार व्यर्थ हो गई थीं;—अनेक बहादुर मुसलमान सैनिक सदाके लिये समरभूमिमें सो गये थे । पर सब वृथा हुआ ! एकमात्र विश्वासघाती देशद्रोही शिलादित्यने सब बातें चौपट कर डालीं । यदि वह दुष्ट विश्वासघात न करता, धोखा देकर शत्रुओंमें न जा मिलता, तो कौन कह सकता है कि वीरवर बाबरका कटा हुआ सिर 'पीली नदी' के किनारे लुढ़कता हुआ और उसकी लाश तड़पती हुई दिखाई देती या नहीं ? पर जो बात होनेवाली थी उसे कौन टाल सकता था ? नहीं तो राजपूत होकर, पवित्र तुआरकुलमें जन्म लेकर शिलादित्य क्यों अपनेही जातिभाइयोंसे विश्वासघात करता ? मरे हुए राजपूतोंके कटे सिरोंको इकट्ठा करके विजयी बाबरने समरभूमिमें अनेक टीले बनवाये और

उनको झोपड़ियोंको जमा करके मैदानके सामनेकी पहाड़ी पर एक गढ़ी बन गई! इस लड़ाईको जीतकी प्रसन्नतामें उसने अपना उपनाम "गाजी" रखा। उसके बाद उसके वंशधर बराबर यह उपाधि धारण करते आये।

बड़े दुःखमें भरे हुए वीरवर संग्रामसिंह मिवात-पर्वतमालाकी ओर बढ़े। उनका हृदय बहुत कष्ट पहुँचानेवाली चिन्तासे पूर्ण था। वे यह स्थिर न कर सके कि कहां जायँ और क्या करें; पर चित्तौड़को वे नहीं लौटे। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि "यदि लड़ाईमें जीत न होगी, यदि शत्रुओंका घमण्ड न टूटेगा, तो युद्धस्थलमेंही रहेंगे, दूसरी जगह न जायगे।"—यह प्रतिज्ञा वे कभी नहीं भूले; बराबर बनवास करने लगे। यदि वीरवर राणाजी कुछ दिन और जीवित रहते तो अवश्यही अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा कर सकते; पर जो होनी थी वह कैसे रुक सकती? उसी लड़ाईके दो वर्ष उनके प्राणोंका अन्त हो गया; बसवा नामक स्थानमें असमयमें वे इस संसारसे चले गये। बहुतोंका अनुमान है कि उनके मन्त्रियोंने विष देकर उनको मार डाला। यह अनुमान कहांतक सच है यह हम नहीं कह सकते; पर इसका ध्यान करनेसे भी छाती फटने लगती है। कहा जाता है कि दुष्ट मन्त्रियोंने स्वतन्त्रता पानेके लिये यह अनुचित काम किया! यदि उन दुष्टोंके इस नीच कामका यही कारण रहा हो, यदि केवल इसी पाप-विचारसे अपने पालनकर्त्ता राजाकी उन्होंने हत्या की हो, तो ऐसी शान्ति स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता तथा ऐसे नरकमय जीवनसे क्या लाभ? प्रजावत्सल, स्वदेशप्रेमी देवताके समान राजाका खून करके जो नराधम शान्ति पाना चाहता है वह आगमें जलकर भस्म हो जाय; इस संसारमें उस नीचकी क्या आवश्यकता? ऐसे लोग यदि भूखों मर जायँ, यदि अनेक कष्ट सहकर प्राण दें, तो अच्छा। नहीं तो स्वार्थके लिये मातृभूमिके मस्तकमें उन्होंने कलङ्कका जो काजल पोता वह सात समुद्रोंका जल पड़नेसे भी नहीं छूट सकता।

कई विवाह करनेका बहुत बुरा परिणाम होता है और अनेक अनर्थ हो जाते हैं। इससे नैतिक शारीरिक सब प्रकारकी उन्नतियोंमें बाधा पड़ती है। इस बुरी प्रथासे सब लोगोंको, विशेषकर राजपरिवारोंको, जो भयानक हानि हो सकती है उसका अनुमान सहजमें किया जा सकता है। यदि एक राजाकी भिन्न

भिन्न रानियोंके पुत्र हों तो सभी चाहेंगी कि राजगद्दी मेरे लड़केको मिले । इस इच्छाका मनमें उठना स्वाभाविक है । आपही आप यह इच्छा धीरे धीरे बढ़ने लगती है; तब भले बुरेका विचार उनको नहीं रहता। अपनी इच्छा पूरी करनेके लिये वे बड़ी चञ्चल हो जाती हैं और उपयुक्त समयकी प्रतीक्षा न करके बिना आगापीछा सोचे जल्दीमें नीचसे नीच काम भी करनेको तैयार हो जाती हैं। राणा संग्रामसिंहकी मृत्युके बाद उनकी पत्नियोंमें महा झगड़ा उपस्थित हुआ;— सभी अपने अपने पुत्रको राजगद्दीपर बिठानेके उपाय सोचने लगीं। उनमेंसे उनके दूसरे पुत्रकी मां तो अपने लड़केको राजा बनानेके लिये इतनी उत्कण्ठित हुई कि कोई दूसरा उपाय न देखकर देशवैरी बाबरसे कुछ सहायता लेनेका उसने विचार किया। उसका यह मतलब था कि बाबर राणा सांगाके सच्चे उत्तराधिकारी को अलग कर उसके पुत्रको राजा बनानेमें मदद करे । यह सहायता पानेकी आशाके बदलेमें उसने बाबरको रणथम्भोरका किला और मालवा राज्य दे दिया। इस बातसे पढ़नेवाले समझ सकते हैं कि रानियां अपने पुत्रोंको गद्दी दिलानेके लिये क्या क्या उपाय तक रच डालती थीं!

राणा संग्रामसिंह न बहुत लम्बे थे न बहुत बाटे; अर्थात् मध्यम आकृतिके थे। पर उनके शरीरमें बड़ा बल था। रंग उनका सुफेद था; आंखें बड़ी बड़ी थीं। वे बड़े वीर पुरुष थे, इस बातकी सचाई उनके शरीरका हाल जाननेसे मालूम हो सकती है; अर्थात् लड़ाइयोंमें उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग खराब हो गये थे *। उनमें अद्भुत साहस था। मालवाके अधिकारी मुजफ्फरको उसीकी राजधानीमें कैद कर उन्होंने बड़े उत्साह और साहसका परिचय दिया था। इसके सिवा दुर्जय रणथम्भोर नगर पर अधिकार करनेके समय उन्होंने जो आश्चर्यमयी वीरता दिखाई थी उससे बहुत दूर दूरतक उनका नाम फैल गया था । सांगामें ऐसे अच्छे गुण देखकर उनका शत्रु बाबर भी उनकी प्रशंसा किये बिना न रह सका । बाबर उनसे डरता और उनको बहुत मानता था। इसीसे फिर दूसरी बार उनसे युद्ध करनेका

* पृथ्वीराजके साथ लड़नेमें उनकी एक आंख फूट गई थी; देहलीके इब्राहीम लोदीके साथ लड़नेमें एक हाथ टूट गया था और गोली लगनेसे एक पांवसे वे लंगड़े भी हो गये थे। इनके अतिरिक्त उनके शरीरमें कमसे कम ८० घाव थे।

उसे साहस नहीं हुआ। बाबरने अपनी जीवनीमें इस युद्धको सच्चा धार्मिक युद्ध लिखा है; परन्तु मेवाड़की अवस्थाका वर्णन यों किया है कि, "राणा सांगाने अपनी बहादुरीसे सबसे बड़ी इज्जत हासिल की थी।" इससे यह बात अच्छी तरह समझमें आ जाती है कि वह राणाजीके गुणोंसे अपरिचित नहीं था। पर हाय! इन गुणोंके अनुसार काम होनेसे पहलेही राणा संग्रामसिंह इस संसारसे चल बसे! उनके मरनेसे प्रजाओंको बड़ा शोक हुआ और भक्ति तथा कृतज्ञताके साथ उन्होंने उनको चिता-वेदिकाके ऊपर एक स्तम्भ बनवाया। राणा सांगाके कुल सात पुत्र थे; उनमेंसे प्रथम और द्वितीय बचपनहीमें परलोकवासी हो गये थे; अतएव तीसरे पुत्र रत्नने उनकी गद्दीका अधिकार पाया।

रत्न संवत् १५८६ (सन् १५३० ई०) में चित्तौड़के सिंहासन पर अभिषिक्त हुआ। वीरता तेजस्विता आदि गुणोंसे भूषित होना राजपूत राजाओंका प्रधान धर्म्म है; राणा रत्नमें ये सब गुण वर्त्तमान थे। अपने पिताकी तरह इसने भी प्रतिज्ञा की थी कि राजधानी छोड़कर सदा युद्धके मैदानमें ही रहूंगा। चित्तौड़का मुख्य द्वार सदैव खुला रखकर वह अभिमानके साथ कहता कि 'एक ओर देहली और दूसरी ओर माण्डू चित्तौड़के मुख्य द्वार है।' यदि राणा रत्न सांगाकी तरह भविष्यका विचार करके काम करता, यदि युवावस्थाकी तेजस्वितासे वह बचता, तो अवश्यही वीरवर सांगाकी प्रतिज्ञाका पालन कर सकता और तब बाबरके वंशधर कभी भारतके मुख्य अधिकारी अटल रूपमें न हो सकते; पर दुर्भाग्यसे चढ़ती जवानीमें ही वह इस संसारसे चल बसा। तेजस्वी राजपूतोंके लिये युवावस्था बड़ी भयानक होती है। इस समय वे जोशमें आकर व्यर्थ झगड़े लड़ाइयोंमें फँस जाते हैं। ऐसे झगड़ोंसे राज्योंको जो हानि होती है उसका कुछ ठिकाना नहीं।

राणा रत्नने चुपचाप बहुत छिपाकर अम्बरके अधिकारी पृथ्वीराजकी कन्याके साथ विवाह किया था। इस विवाहका हाल पृथ्वीराज भी नहीं जानते थे; अतएव जब राजकुमारी बड़ी हुई तब वे उसके विवाहके लिये उद्योग करने लगे और अन्तमें उन्होंने बूंदीके हाड़ा सूर्य्यमल्लके साथ उसका विवाह-सम्बन्ध स्थिर किया। सीधी सादी राजकुमारीने लज्जाके कारण किसीसे उस पूर्व विवाहका हाल नहीं कहा, इसलिये किसीने कुछ रोकटोक नहीं की। परन्तु थोड़ेही दिनोंके बाद

यह विवाह एक बड़े अनर्थका कारण हो गया। राणा रत्न इस विवाहका हाल सुनकर मनमें बहुत दुःखित हुए; सूर्यमलकी इस काररवाईसे उनके हृदयमें बड़ी चोट लगी। इस चोटसे वे इतने अधीर हुए कि बदला लेनेके लिये समयकी बाट देखने लगे। सूर्यमल राणा रत्नके बड़े निकट सम्बन्धी अर्थात् बहनोई थे; तथापि इस अपमानका बदला लेनेके लिये सब बन्धनोंको काटकर वे बदला लेनेके योग्य समयकी प्रतीक्षा करने लगे। पर इससे उनको अपने प्राणोंसे भी हाथ धोने पड़े। आहेरिया अर्थात् वसन्त ऋतुमें शिकार खेलनेका महोत्सव आतेही राणाको ऊपर लिखे कामका अवसर मिल गया। अपने सैनिकों सरदारों और सेवकोंको लेकर वे शिकार खेलनेके लिये निकले। सूर्यमलने भी उनका साथ दिया। बूंदीके हाड़ा लोग मेवाड़के पूर्व ओरके पर्वतोंमें रहते थे। यद्यपि उनका राज्य मेवाड़के अधीन नहीं था, तौभी राणाओंको वे बहुत मानते, लड़ाईके समय उनका चिन्ह धारण करते और मेवाड़के लिये सच्चे उत्साह और उद्योगसे युद्ध करते थे। जिस दिन मुसलमान वीर शहाबुद्दीनसे लड़ते लड़ते राजपूतवीर समरसिंहने वीर परिणाम पाया था, उसी दिन हाड़ावंशके सूर्यमलका पूर्व पुरुष प्रसिद्ध वीर हम्मीर भी अपने देशकी स्वाधीनताके लिये लड़कर वीरगतिको गया था। उसी समयसे हम्मीरके वंशवाले गिह्लोटकुलको बहुत मानने लगे थे, परन्तु राणा रत्नकी कमसमझीके कारण बूंदी और मेवाड़में ऐसा झगड़ा आरम्भ हुआ कि कुछ दिनोंके लिये दोनों राज्योंकी मित्रता मट्टीमें मिल गई।

आहेरिया अथवा शिकारके उत्सवका समय आ गया। राणा रत्न और सूर्यमल एकसाथ एक घने जंगलमें जा रहे थे; उनके साथी उनसे कुछ दूर थे। उपयुक्त अवसर जानकर राणाने एकाएक सूर्यमल पर तलवारका वार कर दिया। सूर्यमल तुरन्त घोड़ेसे भूमि पर गिर पड़े; पर तब भी वे जीवित थे। थोड़ी देरके बाद उनको होश हुआ और कपड़ा फाड़कर उन्होंने अपने घावोंको बांधा; फिर वे चारों ओर आंखें फाड़ फाड़कर रत्नको देखने लगे। उन्होंने देखा कि रत्न दूर भागा जाता है। तब बड़े क्रोध कष्ट और दुःखके साथ चिल्लाकर कहा, "भाग, भाग नामर्द! तू इस समय भाग सकता है पर तेरी नामर्दीके कालिखसे मेवाड़के यशमें सदाके लिये धब्बा लग गया।" रत्नने यह बात सुनी। उसने समझा था

कि अबतक सूर्यमलका शरीरान्त हो गया होगा; परन्तु इस समय तक उनको जीवित देखकर वह पुन: आक्रमण करनेके लिये दौड़ा। पर इस नासमझीका तुरन्त उसे फल मिल गया। उसे ओरसे दौड़ते देखकर सूर्यमल क्रुद्ध सिंहकी तरह उसपर झपटे और उसे भूमि पर पटक तथा उसकी छाती पर घुटना रखकर तलवारसे उसी जगह मार डाला और थोड़ीही देर बाद स्वयं भी बगलमें गिरकर मर गये।

यद्यपि राणा रत्नने केवल ५ वर्ष तक राज्य किया, परन्तु इतनेही समयमें वह बड़ी उत्तम रीतिसे मेवाड़का शासन कर सका। उसके अच्छे शासनके प्रभावसे मेवाड़राज्य मुसलमानोंकी चोटसे बचा हुआ था। उसकी अकालमृत्युके बादही उसका भाई विक्रमजित् चित्तौड़के सिंहासनका अधिकारी हुआ।

संवत् १५९१ (सन् १५३५ ई०) में विक्रमजित्ने † मेवाड़के राजासन पर आरोहण किया। जिन अच्छे गुणोंसे प्रजा राजाका आदर करती है और जिनके कारण रत्नको उसकी प्रजाएँ बहुत मानती थीं उन गुणोंमेंसे एकभी गुण विक्रममें नहीं था। अपने बड़े भाईके अच्छे गुणोंको छोड़कर उसने उसके दोषही ग्रहण किये थे। रत्नकी तरह यह भी तेज-मिजाज और जल्दबाज था। इसके सिवा बदला लेनेकी भी इसे रत्नकी तरह आदत थी और इसमें क्षमताका अभाव था। ये दोष धीरे धीरे इतने बढ़ गये कि मेवाड़के सरदार और सामन्त लोग उससे बहुत बुरा मानने लगे। बुरा माननेके और भी कई कारण थे। एक यह कि राणा विक्रमजित् अपने कामोंका ठीक ढङ्गसे प्रबन्ध न कर सदा दिन शिकार कुश्ती आदिमें समय व्यतीत करता था। विशेष कर बहुत पहलेसे राजपूत सवारोंका जो सम्मान था उसे उनसे छीनकर राणाने पैदल सिपाहियों और पहलवानोंको देना आरम्भ किया था। यह अप्रतिष्ठा देखकर सरदारोंको बहुत दु:ख हुआ और बड़े कष्ट तथा दीनदशामें वे दिन बिताने लगे।

सरदारोंका पुराना अधिकार छीन और वह अधिकार छोटे दर्जेके पहलवानों तथा पैदल सिपाहियोंको देकर राणा विक्रमजित्ने नई प्रथा चलाई। जान पड़ता है कि यह बात उन्होंने मुसलमानोंसे सीखी थी। मुसलमान पैदल सिपा-

† इसका असल नाम विक्रमादित्य था, पर लोग इसको विक्रमजित् कहते थे।

हियोंका विशेष आदर करते हैं; परन्तु राजपूत वीरोंको पैदल कम पसन्द है। किलेका विराव करनेके समय अथवा जब राजपूतवीर घोड़ोंसे उतर और गलीचे बिछाकर थकावट दूर करनेके लिये बैठते हैं तभी उनको पैदल सैनिकोंकी आवश्यकता होती है। इसके सिवा किसी दूसरे समय नहीं। यद्यपि मुसलमान पहलेहीसे पैदल सैनिकोंसे काम लेते हैं, परन्तु जबसे लड़ाइयोंमें वे तोपोंका व्यवहार करने लगे तबसे उनके यहां पैदलोंका आदर बढ़ और सवारोंका घट गया; क्योंकि युद्धमें पैदल सिपाही अधिक सुगमतासे तोपें दाग सकते हैं। परन्तु राजपूत वीर अपनी पुरानी युद्धप्रथा अबतक छोड़ नहीं सके हैं। अत्यन्त प्राचीनकालसे घोड़े, तलवारें और भाले उनको उनके प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। इन तीनोंको वे धर्मयुद्धका प्रधान सहायक मानते और इनका आदर करते है। आज १८वीं * शताब्दीके विज्ञानबलसे युद्धके समय काममें आने योग्य अनेक नये नये अस्त्र शस्त्र बन गये और बन रहे हैं; परन्तु अपनी शारीरिक शक्ति अथवा भुजबल पर भरोसा रखनेवाले वीर राजपूत उनका व्यवहार करना अच्छा नहीं समझते। वे कहते हैं कि तलवार आदि काममें न लाकर तोपों बन्दूकोंकी सहायतासे लड़ना सच्ची वीरताके नामको कलङ्क लगानेवाला है।

अपमानित सरदारोंके हृदयोंमें विद्वेषकी जो आग धीरे धीरे सुलग रही थी वह समय पाकर बल उठी। वे राणाके साथ स्नेह भक्ति इत्यादि रखना छोड़कर एक प्रकार अलग रहने लगे। इतने पर भी राणाजीके ज्ञाननेत्र नहीं खुले। वे यह नहीं समझ सके कि शीघ्र उनको घोर सङ्कटमें पड़ना पड़ेगा। उनकी सुस्ती और नासमझीके कारण राज्यमें बड़ी गड़बड़ फैली। पहाड़ी असभ्य लोग सैन्यादि की परवा न करके चित्तौड़के किलेके सामने आते और जबरदस्ती गाय भैंस इत्यादि ले जाते थे। प्रजाओंके धन मानकी रक्षा करना कठिन हो गया था। सभी लोग बहुत कष्टमें पड़कर चिल्ला चिल्लाकर कहने लगे थे कि "फिर पपाबाईका ‡

* क्योंकि टाड साहबने यह ग्रन्थ १८ वीं शताब्दीमें लिखा था।

‡ बहुत प्राचीन समयमें पपाबाई नामकी कोई राजपूत रानी थी। उसके समयमें राज्यमें बड़ी अराजकता और बेअमनी फैली थी। तबसे जितने राज्य अराजक होते हैं उन सभोंको राजपूत "पपाबाईका राज्य" कहा करते हैं।

राज्य आया !" राणाजीने अपने सरदारोंको पहाड़ी असभ्य लोगोंकी दुष्टता रोकनेके लिये बुलाया पर सबने एकस्वरसे जवाब दिया कि "इस कामके लिये आप अपने नायकोंको भेजिये।"

थोड़े ही दिनोंके बीच मेवाड़में मानों एकदम अराजकता सी फैल गई। गुजरातके अधिकारी सुलतान बहादुरको यह समय अपना मतलब निकालनेके लिये अच्छा जान पड़ा। सीसोदीय वीर पृथ्वीराजने गुजरातके मुज़फ़्फ़रको परास्त करके लाकर अपने नगरमें कैद किया था, इससे मुसलमानोंका बड़ा अपमान हुआ था; आज सुलतान बहादुरने उस अपमानका बदला लेनेका दृढ़ निश्चय किया। गुजरात और मालवेमें जितने वीर सैनिक थे सबको साथ ले और लड़ाईके सामानसे सजकर उसने युद्धके लिये प्रस्थान कर दिया। उस समय राणा विक्रमजित् बून्दी-राज्यके अन्तर्गत लैचा नामक स्थानमें सेनाके सहित रहता था। सुलतान बहादुरने अपना विशाल सैन्यदल लेकर उसी जगह उसपर आक्रमण किया। समुद्रकी तरह फैली हुई बहुत बड़ी सेनाको अपनी ओर बढ़ते देखकर राणा विक्रमजित् तनिक भी नहीं डरा न निरुत्साहही हुआ। वह वीरवर संग्रामसिंहका पुत्र था; संग्रामसिंहका खून उसकी नस नसमें वर्त्तमान था; ऐसी दशामें क्या वह कापुरुष और डरपोक होता ? क्या शत्रुओंका आक्रमण रोकनेमें असमर्थ हो जाता ?—नहीं नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता था। यद्यपि अच्छी शिक्षा न मिलनेके कारण उसका चरित्र कुछ बिगड़ गया था, पर तौभी वह वीर पुरुष था। तुरन्तही दोनों ओरकी सेनाएँ एक दूसरेके सामने पहुँचीं। घोर लड़ाई आरम्भ हुई। परन्तु राणाके पैदल सैनिकोंका शत्रुओंके आगे ठहरना कठिन हो गया। अतएव वह बड़े संकटमें पड़ा। उसके सैनिक सरदार आदि कोई उसे उस संकटसे उबारनेके लिये आगे नहीं बढ़े, किन्तु राणाको उसकी नासमझीका उचित फल चखा देनेके लिये उसी अवस्थामें छोड़कर संग्रामसिंहके बालक पुत्र उदयसिंह तथा चित्तौड़की रक्षाके लिये वे गये।

अहा ! चित्तौड़के नामकी कैसी अपूर्व महिमा है ! पिछली लड़ाईमें संग्रामसिंहके साथ इतने वीर मर चुके थे कि चित्तौड़पुरीको वीरोंसे एकदम खाली कह सकते हैं; परन्तु आज सुलतान बहादुरके उस पुरीपर आक्रमण करतेही न मालूम

जिस दैवी शक्तिसे उन मरे जले हुए वीरोंकी राखमेंसे असंख्य वीर निकल आये। जो जो राजपूत राजे इससे पहले मेवाड़के बड़े भारी शत्रु थे, आज वे सब भी शत्रुता भूल कर—अपने प्राणोंकी परवा न कर—बड़े उत्साहमें भरे हुए चित्तौड़की रक्षा करनेके लिये आये। स्वयं सूर्यमल्ल जिन्होंने चित्तौड़ पानेकी आशा त्यागकर वनमें देवल नगर स्थापित कर लिया था, आज अपने पूर्वपुरुषोंकी पवित्र भूमि चित्तौड़ पुरीकी रक्षाके लिये अपने शरीरका बचा हुआ रक्त बहानेको चले। इसी प्रकार बूंदीका राजपुत्र पांचसौ हाड़ावीरोंके साथ और शनिगुरु देवरा तथा राजस्थानके अन्यान्य राजपूतवीर चारों ओरसे आ आकर मुसलमानोंके साथ युद्ध करनेके हेतु इकट्ठे होने लगे।

मध्य भारतके जितने मुसलमान अधिकारियोंने अबतक चित्तौड़पुरी पर आक्रमण किया था उन सबमें यही आक्रमण कठिन था। इस भयानक लड़ाईके समय एक चतुर यूरोपियन गोलन्दाजने * भी सुल्तान बहादुरको सहायता की थी।

* बहुत प्राचीन समयमें भी हिन्दुओंमें तोपों और बन्दूकोंका व्यवहार होता था यह हम आगे लिख चुके हैं। जो लोग पुराणका तत्व नहीं जानते, उनकी जो इच्छा हो कहें, हम उनकी बातोंकी ओर ध्यान भी देना नहीं चाहते, क्योंकि हम खूब जानते हैं कि प्राचीन हिन्दुओंने अपने अद्भुत विज्ञानबलसे अनेक प्रकारके आग्नेय अस्त्रशस्त्र ईजाद किये थे। भारतकी पौराणिक पुस्तकें ढूंढ़ ढूंढ़कर अच्छी तरह पढ़नेसे इन अस्त्रशस्त्रोंके विषयमें अनेक बातें मिलेंगी। चन्दकविने अपने ग्रन्थमें बन्दूकों और तोपोंका बहुत जगह उल्लेख किया है। इन आग्नेय अस्त्रोंका नाम उन्होंने 'नलगोला' लिखा है। मुसलमानोंने कबसे लड़ाइयोंमें तोपें बन्दूकें काममें लाना आरम्भ किया, यह निश्चय करना कठिन है। कहा जाता है कि अलाउद्दीनने किला जीतनेके समय 'मुञ्जनिक' नामक एक कलका व्यवहार किया था, पर वह कल बन्दूक वा तोपकी तरह नहीं थी। मालूम होता है कि बाबरने ही लड़ाईमें सबसे पहले तोपोंका व्यवहार किया। तोपोंका प्रबन्ध करनेके लिये उसके यहां रूमीखां नामक एक गोलन्दाज था। टाड साहबने इस रूमीखांको मुल्क सीरियाका रहनेवाला लिखा है।

टाड साहबने फिरंगी लाबरीखांको प्रसिद्ध पुर्तगीज वीर वास्कोडिगामाका

भट्टकवियोंने इसका नाम "फिरंगानका लाबरीखां" लिखा है। इसीकी चतुराईसे सुलतान बहादुर चित्तौड़वालोंको परास्त करके पुरानी बातका बदला ले सका।

लेवामें विक्रमजित्को परास्त करके विजयी बहादुरने आकर चित्तौड़ पर आक्रमण किया। चित्तौड़के लिये आज घोर सङ्कट उपस्थित था। इस संकटमें उसका उद्धार कौन करता? कौन सीसोदीय कुलका मान सम्भ्रम बचाता? जिन राजपूत वीरोंने स्वदेशप्रेमके जोशमें तलवार पकड़ी थी वे मुसलमानी सेनाके मुकाबलेमें मुट्ठीभर भी नहीं थे। तौभी भगवान् एकलिङ्गके नाम पर शपथ खाकर, उन्होंने प्राण रहते तक युद्ध करनेका प्रण किया और बाजे बजवाकर वे तुरन्त शत्रुओंके सामने आ पहुंचे। राजपूतोंकी ओरसे लड़ाईके बाजोंका बजना था कि सुलतान बहादुरके भयानक गोले मानों विश्वब्रह्माण्डको रसातलमें पहुँचा देनेके लिये असंख्य वज्रोंकी तरह गर्ज उठे! प्रकृति स्तम्भित हो गई;—मानों थोड़ी देरके लिये सारा संसार ही लुप्त हो गया! मानों इस जगत्के सैकड़ों टुकड़े होकर रसातलमें डूब गये। राजपूत वीर दूने उत्साहमें भर गये और जिधरसे गोले आये थे उधरही लक्ष्य करके उन्होंने असंख्य तीर छोड़े; कदाचित् ही उनके दो चार तीर व्यर्थ गये होंगे। फिर बड़े भयानक शब्दके साथ शत्रुओंकी तोपें गर्ज उठीं! उनका धुवां रणस्थलमें सर्वत्र फैल गया। सूर्यतकको उस धुयेंने छिपा लिया! थोड़ी देरके लिये कुछ भी दिखाई नहीं देता था। केवल अन्धकार—घोर अन्धकार! इस प्रकार बहुत देर तक हिन्दुओं और मुसलमानोंमें लड़ाई होती रही। इस लड़ाईमें दोनों ओरके असंख्य सैनिक मारे गये। सुलतान बहादुर उस समय किसी प्रकार चित्तौड़को अपने अधिकारमें न कर सका। अन्तमें चतुर लाबरीखांने बीका पहाड़ीके नीचे एक बड़ी सुरंग खुदवाई जो बारूदसे भरी गई। महा भयङ्कर शब्दके साथ बारूदका ढेर जल उठा और उसके साथही किलेकी दीवार ४५ हाथ तक एकदम उड़ गई। उस जगह हाड़ा राजकुमार वीर अर्जुनराव अपने ५०० सैनिकोंके साथ युद्ध कर रहा था; अतएव वहांकी भूमिके उड़तेही

एक सैनिक लिखा है। पर जिस समय (सन् १५३३ ई०) में सुलतान बहादुरने चित्तौड़पर आक्रमण किया था उससे बहुत पहले वास्कोडिगामा मर चुका था। हो सकता है कि लाबरीखां डिगामाके बादके किसी पुर्तगीज जहाजोंके दलमें रहा हो।

वह भी अपने साथियोंके साथ नाश हो गया। चित्तौड़दुर्गकी दीवारका एक हिस्सा टूट जाने पर शत्रुओंका दल उसी मार्गसे अन्दर प्रवेश करनेके अभिप्रायसे बड़ी तेजीके साथ उस ओर दौड़ा; परन्तु चित्तौड़पुरी अबतक वीरशून्य नहीं हो गई थी; अब भी अनेक वीर पुरुष वहां वर्त्तमान थे;—शरीरमें प्राण और नसोंमें रक्त रहते क्या वे प्राणोंसे भी अधिक प्यारी चित्तौड़पुरीको शत्रुओंके हाथोंमें जाने दे सकते थे? कभी नहीं। देखतेही देखते वीरवर दुर्गाराव सत्यु और दद्दू नामक दो वीर चूंडावत सरदारों तथा कुछ सैनिकों और सामन्तोंके सहित उस टूटे हुए स्थानके पास आया; वहां दह अचल अटल दुर्भेद्य पर्वतकी तरह खड़ा हुआ। उसके शरीरमें प्राणके रहते तक कौन उसे हटा सकता था? शत्रु लोग दलके दल उसपर आक्रमण करते थे; परन्तु जबतक वह और उसके साथी जीवित थे तब तक शत्रुओंका सब उद्योग व्यर्थ हुआ। लेकिन थोड़ेसे राजपूत वीर असंख्य शत्रु सैनिकोंके मुकाबलेमें कबतक ठहर सकते? अद्भुत वीरताके साथ बहुत देर तक लड़नेके बाद वे मारे गये। शत्रु लोग हर्षके मारे चिल्ला उठे और बड़े वेगके साथ उस टूटे हुए मार्गसे आगे बढ़े, परन्तु अकस्मात् उनको रुकना पड़ा—उनसे एक पग भी आगे बढ़ा नहीं गया। उन्होंने देखा कि एक अत्यन्त सुन्दरी और बलवती स्त्री लड़ाईके सामानसे सजी हुई घोड़े पर सवार हाथमें भाला लिये रास्ता रोके खड़ी है! यह स्त्री कौन थी? यह और कोई नहीं, राठोरकुलोत्पन्ना सीसोदीय-राजरानी जवाहिरबाई थी। रानी जवाहिरबाई शत्रुओंका मार्ग रोके खड़ी थी। क्रमशः शत्रुओंको आगे बढ़ते देखकर वह भी आगे बढ़ी। उसके भालेकी चोट खाकर अनेक शत्रु इस संसारसे चल बसे। पर सब वृथा हुआ! देखतेही देखते सब शत्रु उसपर टूट पड़े; तौभी उस वीरेन्द्राणीने उत्साह नहीं छोड़ा; बड़े साहस और योग्यताके साथ वह युद्ध करती रही। सुल्तान बहादुर दूरसे यह लड़ाई देख रहा था। राजपूतरानीकी रणकुशलता देखकर उसे आश्चर्य हुआ! किन्तु इतने पर भी कुछ फल नहीं हुआ। चित्तौड़की रक्षाका कोई दूसरा उपाय न देखकर अन्तमें वीरनारी जवाहिरबाईने शत्रुओंके बीच घोड़ा दौड़ाकर लड़ते लड़ते प्राण त्याग दिये। वह चली गई पर उसका नाम संसारमें बाकी है।

आज चित्तौड़के लिये अच्छा दिन नहीं था। ऐसे सङ्कटके समयमें उसकी रक्षा

करना कठिन ही था। सरदारोंने विचारा तो उनको मालूम हुआ कि अब कोई आशा बाकी नहीं है। तोभी न जाने चित्तौड़की ऊंची चोटीसे गम्भीर स्वरमें कौन बोल उठा कि "राजबलिका प्रबन्ध करो।" सरदार लोग जरा भी हतोत्साह या निराश नहीं हुए। पर वे राजबलि कहांसे लाते? एकमात्र संग्रामसिंहका पुत्र उदयसिंह जीवित था; पर वह बालक था; क्योंकर तलवार लेकर लड़नेके लिये आता? तो क्या देवीकी आज्ञा टाल दी जाती? दुर्गके अन्दर सरदारोंमें इसी विषयमें बातें होने लगीं। इतनेमें देवलके अधिकारी बाघजीने उनसे कहा,—"क्या बप्पारावलका पवित्र रक्त इस शरीरमें नहीं है? फिर भला आपलोग राजबलिके लिये क्यों चिन्ता कर रहे हैं? मैं स्वयं लड़ाईमें जाऊंगा ताकि देवीकी आज्ञाका पालन हो।" सबकी चिन्ता दूर हुई। जिस सूर्यमलने चित्तौड़के कारण पृथ्वीराजसे घोर विरोध किया था यह बाघजी उन्हींका वंशधर था; अतएव सीसोदीयवंशका था। थोड़ी देरके लिये उसका राजाकासा सम्मान किया गया। किरण चमर और छत्र थोड़े समयके लिये उसके सिरके ऊपर सुशोभित हुए। इसके बाद उसने पीले कपड़े पहने। अन्तिम समयमें वीरों जैसे वस्त्र पहनकर सरदार सामन्त और प्रधान प्रधान लोग एक दूसरेसे गले मिलकर विदा हुए। बाघजीके साथ साथ वीरवर बप्पारावलका "छड़ी" * निशान जा रहा था। इधर बालक राजकुमार उदयसिंह बूंदीके विश्वसनीय अधिपति शूरथानको सुपुर्द हुआ। चित्तौड़की इस अवस्थामें वीरवर बप्पारावलकी विजयपताका बाघजीके साथ ऐसी शोभा देती थी जैसी उसने कभी नहीं दी थी। लड़ाईमें जानेसे पहले जुहारका प्रबन्ध हुआ। सब लोग एक दूसरेसे मिले। अब समय नहीं था; शत्रु लोग उस टूटे हुए मार्गसे बराबर आगे बढ़े चले आते थे; चित्तौड़ नगरके अन्दर प्रवेश करना ही चाहते थे। स्त्रियोंके लिये चिता तैयार करनेका भी समय नहीं था। सरदारोंने शीघ्र काम समाप्त करनेका एक दूसरा उपाय सोचा। दुर्गके अन्दर एक बहुत बड़ा गड्ढा खोदकर बारूद तथा दूसरी अनेक प्रकारकी जलनेवाली चीजोंसे भरा गया।

* "छड़ी" महाराज बप्पारावलके राज्यचिह्नका नाम है। एक लकड़ीके डण्डेके ऊपर प्रायः दो हाथ लम्बा एक चमड़ा लगा रहता है। उसके ऊपर शुतरमुर्ग और बीचमें सोनेका सूर्य बना होता है।

उसमें आग लगाई गई। बड़े जोरका शब्द हुआ। देखते देखते रानी कर्णवतीके साथ १३ सहस्र राजपूत ललनाएं शोक-राग गाती हुई उस आगमें कूदीं। एक-साथ १३ सहस्र स्त्रियां इस संसारसे चल बसीं! थोड़ीही देर बाद उनका चिह्न भी दिखाई नहीं देता था। रूप, यौवन, लावण्य, गौरव, क्षण भरमें सब चले गये। अब सरदारोंको चिन्ता दूर हुई। अब किसीकी ओर ध्यान लगा नहीं रहेगा; किसीके लिये आंसू बहाना नहीं होगा। जिनके लिये आंखोंसे आंसू गिरते—जो सब कुछ थीं—वे प्रीति देनेवाली आनन्दमयी कन्याएँ बहनें और पत्नियां अपने तई आगको समर्पण कर चुकी थीं। बालक राजकुमार उदयसिंह भी एक विश्वासी आदमीकी † रक्षामें दूसरी जगह जा चुका था। तब भला किसका डर या खटका होता? चित्तौड़के वीर लोग जोशमें भरे हुए बाहर निकले; लड़ाईके बाजे बड़े भयङ्कर शब्दोंके साथ बज उठे। नङ्गी तलवार खींचकर चित्तौड़के बचे हुए वीरोंको साथमें लिये हुए बाघजी मुसल्मानी सेनाके सामने पहुँचा। असंख्य शत्रु मारे गये। परन्तु फिर भी कुछ नहीं हुआ। शत्रुसेनारूपी विशाल समुद्रमें बुलबुलोंकी तरह थोड़ेसे राजपूत सैनिक देखते देखते नष्ट हो गये।

सुलतान बहादुरकी प्रचण्ड प्यास आज शान्त हुई *। अगणित राजपूत नर नारियोंका खून पीनेसे उसके हृदयकी भयानक आग बुझी! लड़ाईमें विजय पाकर वह चित्तौड़ नगरके अन्दर घुसा। ओफ! कैसा भयानक दृश्य उसे दिखाई दिया। वह दृश्य देखकर वह ठिठक गया! सहसा उसका कलेजा कांप उठा!—चित्तौड़के सब रास्ते खूनसे रँगे हुए थे; अनेक कटे हुए सिर, पेट, रानें, हाथ, पांव इधर उधर पड़े थे; कहीं अधमरे लोग तड़प तड़पकर भयङ्कर चिल्लाहट मचा रहे थे; कोई छुरी लेकर अपनाही हृदय फाड़ रहा था!—आज चित्तौड़के लिये प्रलयका समय था! वहां कोई नहीं था! बाल, युवक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, सबने प्राण त्याग दिये थे! चित्तौड़पुरी आज जीवशून्य थी। राजस्थानके प्रधान प्रधान

† जो विश्वासी राजपूत उदयसिंहको ले गया था उसका नाम चुकासेन दुसेरा था। ऐसे उपकारी व्यक्तिका नाम आदरके साथ लिये जानेके योग्य है।

* संवत् १५८९ (सन् १५३३) की ज्येष्ठ कृष्णा १२ को चित्तौड़की यह घटना हुई थी।

सरदारकुल रक्षकरहित हो गये थे—प्रधान प्रधान वीरवंश जड़ सहित नष्ट हो गये थे! इस भयानक कालयुद्धमें ३२ हजार राजपूत योद्धे वीरगतिको गये। यह चित्तौड़में दूसरा भयङ्कर उपद्रव था।

विजयी बहादुर पन्द्रह दिनों तक अनेक प्रकारके उत्सव और आनन्द करता रहा। इसके बाद समाचार मिला कि मुगल वीर हुमायूं चित्तौड़का उद्धार करने के लिये दल बलके सहित आ रहा है। मारे डरके बहादुरका हृदय कांप उठा; कुछ अधिक देर न करके अपने देशको लौट जानेका प्रबन्ध करने लगा। यह पता लगाना कठिन है कि किस गूढ़ मतलबसे हुमायूं बङ्गालकी जीत छोड़कर चित्तौड़ के उद्धारके लिये गया। मुसलमान इतिहासलेखकोंने इस विषयका ठीक निर्णय न कर सककर भूलसे लिख दिया है कि वह राणा विक्रमजित्के बहुत प्रार्थना करने पर बंगालका राज्य छोड़कर चित्तौड़की ओर आनेपर लाचार हुआ। परन्तु इस विषयमें भट्टकवियोंने जो कुछ लिखा है वही ठीक जान पड़ता है। उन्होंने लिखा है कि पवित्र भ्रातृत्वके बन्धनमें बँधकर ही उसे बहादुरके अत्याचारोंसे चित्तौड़का बचाव करनेके लिये आना पड़ा था। उदयसिंहकी माता कर्णवतीने उसे इस भ्रातृत्वबन्धनमें बांधा था। इस पवित्र बन्धनको "राखीबन्धन" कहते हैं। जो लोग यह पवित्र धर्मसम्बन्ध करते हैं वे राखीबन्ध भाई माने जाते हैं। भट्टकवियोंने लिखा है कि चित्तौड़के भयानक उथलपुथलके समय जब वीरनारी जवाहिरबाईने अपने प्राण त्यागे, तब रानी कर्णवतीने अपने बालक पुत्रके बचावका कोई अच्छा उपाय न देखकर उसे हुमायूंके पास भेजा और राखीसम्बन्ध किया। इस सम्बन्धसे हुमायूं उनका भाई हुआ; अतएव धर्मबहिन कर्णवतीका छुटकारा करनेके लिये चित्तौड़की ओर चला। यदि लड़ाईके समय तक वह पहुँच जाता तो निठुर बहादुर चित्तौड़की दुर्दशा न कर सकता और कर्णवतीका बचाव करनेके लिये उसने जो प्रतिज्ञा की थी वह पूरी होती; परन्तु ईश्वरकी इच्छासे देर हो गई।

राखीके उत्सव पर राजपूतस्त्रियां जिसे भाई बनानेकी इच्छा होती है उसके पास राखी भेजती हैं। यह प्रथा उनमें कबसे प्रचलित हुई, सो नहीं कह सकते; परन्तु इससे राजपूतवीरोंको जैसा सम्मान मिलता है वैसा राज्य पानेसे भी नहीं

मिल सकता । प्रसिद्ध मुगल बादशाह अकबर जहांगीर, शाहजहां और औरङ्गजेब * भी इस पवित्र राखीबन्धनके सम्बन्धसे अपनेको कृतार्थ मानते थे ।

कभी कभी राजपूतकुमारियां भी राखी भेजती हैं; परन्तु जबतक बहुत सङ्कट नहीं पड़ता या बहुतही अधिक आवश्यकता नहीं होती तबतक वे यह सम्बन्ध नहीं करतीं । चुने हुए व्यक्तिके पास राखी भेजनेके समय राजपूत स्त्रियां उसे "धर्मभाई"की उपाधि देती हैं । यह उपाधि और राखी पाकर धर्मभाई अपनी धर्मबहिनके साथ उपकार करनेके लिये अपने प्राणों तकके दे देनेकी प्रतिज्ञा करता है और समय आ पड़ने पर इस प्रतिज्ञाका पालन करनेमें कुछ भी आगा पीछा नहीं करता । परन्तु इस सम्बन्धमें एक विचित्रता पाई जाती है; वह यह कि धर्मभाई धर्मबहिनके लिये अपने प्राणोंको कष्टमें डालने पर भी कभी उसका मुख देखने नहीं पाता; क्योंकि धर्मबहिन कभी उसका सामना नहीं करती । तो भी इस पवित्र भ्रातृत्वबन्धनमें ऐसी अद्भुत शक्ति है कि वीर लोग सदा यह सम्बन्ध करनेकी इच्छा किया करते हैं और यह इच्छा पूरी होने पर अपनेको कृतार्थ मानते हैं । जो 'राखी' ऐसी पवित्र वस्तु है, जिसके पानेकी राजराजेश्वर तककी इच्छा होती है, उसके बनानेका कोई नियम नहीं है;— सभी अपनी अपनी अवस्थाके अनुसार उसे बना सकते हैं । कोई स्त्री तो जवाहरात और सोनेसे सजकर और कोई मामूली रेशमके डोरेसे राखी बनाकर अपने धर्मभाईको अर्पण करती है । राखी पाकर धर्मभाई बदलेमें रेशम, साटिन या जरीकी बहुमूल्य अंगिया अथवा चोली धर्मबहिनके पास भेजता है † । कभी कभी इस चीजके साथ वह

* जो हिन्दूविद्वेषी औरंगजेब राजपूतों पर कठोर अत्याचार करता था उसने भी बड़े आनन्दके साथ उदयपुरकी राजमाताकी राखी ग्रहण की थी उसने उनके पास कई पत्र भेजे थे जिनमें दिखाया हुआ पवित्र भाव देखकर आश्चर्य्य होता है (टाड साहबने उनमेंसे दो पत्र पाये थे) उन दोनों पत्रोंमें औरंगजेबने राजमाता को "धार्मिकाबहिन" कहकर लिखा था ।

† टाड साहब लिखते हैं कि राखी देनेके सम्बन्धमें अनेक मनोहर कहानियां सुनी जाती हैं । स्वयं टाड साहब ऐसे भले आदमी थे और उच्च पदपर आरूढ़ थे कि अनेक राजपूत स्त्रियोंने उनकी सहायता पानेके लिये उनके पास राखी भेज-

उपहारमें धर्मबहिनको एकाध गांव भी दे देता है। मुगलवीर हुमायूंने कर्णवतीकी राखी पाकर आनन्दके साथ कहा था कि "वे जो कहेंगी मैं करनेको तैयार हूं। अगर वे रणथम्भोरका किला भी चाहेंगी तो दे दूंगा।" हुमायूंने इस प्रतिज्ञाका पालन करनेका उद्योग किया और धर्मबहिन तथा बहनोइयोंकी सहायता करने के लिये वह बगाल छोड़कर चित्तोड़ गया। उसकी वीरता देखकर कहा जा सकता है कि रानी कर्णवतीने योग्य आदमीको राखी दी थी। हुमायूं जैसा वीर था वैसा ही उदारहृदय और सत्यप्रिय भी था। अपने पिताके साथ रहकर तथा दूसरी लड़ाइयोंमें उसने जो वीरता प्रकट की थी उसका वृत्तान्त भारतके इतिहासमें वर्तमान है और बाबरने भी अपनी जीवनीमें लिखा है। अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेमें वह पूरी तरह समर्थ हुआ। दुष्ट बहादुरको उसने चित्तोड़से दूर भगाया और मालवाके अधिकारीने बहादुरको सहायता की थी अतएव उसकी राजधानी माडू उससे छीनकर उसने वहांकी गद्दीका अधिकारी विक्रमजित्‌को बनाया।

राणा विक्रमजित्‌ने चित्तोड़के सिंहासनका अधिकार पुनः प्राप्त किया। दुःख, कष्ट, उपद्रव सहकर वह फिर राज्यमें आया। परन्तु दुःखकी बात है कि इतना कष्ट उठाने पर भी उसकी चाल चलनमें कुछ अन्तर नहीं पड़ा; उसके ज्ञाननेत्र नहीं खुले। थोड़ेही दिनोंके बाद पुनः उसकी कठोरताका परिचय मिलने लगा; फिर वह अपने सरदारोंके ऊपर अनेक प्रकारके अत्याचार करने लगा। धीरे धीरे उसकी कुचाल इतनी बढ़ गई कि अपने आप और अपनी मर्यादाको भूलकर वह जानवरोंकासा व्यवहार करने लगा। यहांतक कि जिस कर्मचन्द्रने विपत्तिके समय उसके पिताको आश्रय दिया था, जो वृद्ध होकर मरनेके निकट पहुंच चुका था, उस माननीय वृद्धको उसने दरबारमें सबके सामने पीटा। यह अन्याय और अप्रतिष्ठा देखकर सरदारोंको बहुत दुःख हुआ, अपने अपने स्थानसे वे उठ खड़े हुए और प्रधान सरदार चूंडावत वीर कर्णाजीने सबसे कहा, "भाइयो, अबतक हमलोग केवल फूल सूंघते आये; अब फल खयेंगे।"—इसपर अपमानित

कर उनको धर्मभाई बनाया था। उनमें उदयपुर, बूंदी और कोटेकी रानियां तथा राणाओंकी कारो बहिन चन्द्राबाई अधिक प्रसिद्ध हैं। यद्यपि राखियां साधारण थीं परन्तु टाड साहबने उनको अमूल्य रत्न समझकर ग्रहण किया था।

कर्मचन्द बोल उठा—"कल्ही फल मिल जायगा।" फिर ज़रा भी देर न करके सब लोग राजसभा छोड़कर चले गये।

राजा पूजनीय देवता होता है; यदि वह बालक हो तौभी राजभक्त राजपूत देवता मानकर उसे पूजते हैं। यह हिन्दुओंके धर्म्मग्रन्थकी आवश्यक बात है; इस नियमका पालन न करनेसे सब प्रकारके सुखोंमें बाधा पड़ती है। परन्तु इसकी सीमा भी है; आवश्यकता होनेपर यह नियम तोड़ा भी जा सकता है। यदि राजा दुराचारी हो, यदि उससे राज्यको हानि पहुँचती हो, तो प्रजा उसे देवता नहीं किन्तु साधारण मनुष्य समझकर राज्यसे अलग कर सकती है। राजपूतोंके न्यायग्रन्थोंमें ऐसे अनेक नियम पाये जाते हैं। परन्तु ऐसी घटना कदाचित् ही कभी होती है; ऐसेही कभी राजपूत राजे प्रजाओं पर अत्याचार करते हैं; क्योंकि राजा प्रजामें एक ऐसा दृढ़ सम्बन्ध होता है कि एक दूसरेको कष्ट नहीं पहुँचा सकता। जिन असंख्य स्त्री पुरुषोंके भाग्यकी डोरी राजाके हाथमें होती है, जो उसको (राजाको) पिता और देवता मानकर उसकी भक्ति करते हैं, भला पत्थरसे अधिक कठोर हृदयवाला कौन राजा होगा जो उन स्त्री पुरुषोंको दुःख देना पसन्द करेगा?

क्रोधमें भरे हुए सरदार लोग वीरवर पृथ्वीराजको उपपत्नीके गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्र बनवीरके पास गये और उससे सब हाल कहकर बोले कि चित्तौड़की गद्दीके अधिकारी आप हूजिये। पहले बनवीर उनके प्रस्ताव पर राजी नहीं हुआ; राजाको हटाकर उसकी जगह राज्य करना उसे बहुतही अनुचित जान पड़ा; परन्तु जब उसने उस समयकी मेवाड़की अवस्थाका विचार किया और सोचा कि यदि इस समय सरदारोंकी बात मानी नहीं जायगी तो राज्यकी और भी बुरी दशा होगी, तब उसने चित्तौड़का अधिकारी होना स्वीकार कर लिया। विक्रमजित् सिंहासनसे उतारा गया। इसका उसे इतना शोक हुआ कि थोड़ेही दिनोंके बाद वह मर गया। उधर जिस समय राजमहलकी स्त्रियां रो रोकर उसके मरनेकी सूचना दे रही थीं उस समय इधर बनवीरके राजगद्दीपर बैठनेका हर्ष प्रकट हुआ जिससे वह शोकध्वनि दब गई।

नौवां अध्याय।

वनवीरका मेवाड़-शासन;—सांगाके बालक पुत्र उदयसिंहको मारनेका उद्योग;—उदयसिंहका बचाव;—बहुत दिनोंतक अज्ञातवास;—सरदारोंका उदयसिंको राणा मानकर ग्रहण करना;—दूनाका हाल;—उदयसिंहका चित्तौड़पर अधिकार प्राप्त करना;—वनवीरका सिंहासनसे उतारा जाना;—नागपुरके भौंसलोंकी उत्पत्तिका प्रसाम्त;—राणा उदयसिंहका राजत्व;—उनकी अयोग्यता;—हुमायूंका तख्तसे उतारा जाना;—अकबरका जन्म;—हुमायूंका तख्तपर पुनः बैठना;—उसकी मृत्यु;—अकबरका राज्य पाना;—उदयसिंह और अकबरके चरित्रकी समालोचना;—अकबरका चित्तौड़ पर आक्रमण करना और राणाका वहांसे चला जाना;—राजपूतोंका चित्तौड़की रक्षाके लिये तलवार पकड़ना;—जयमल और पुत्तू;—वीरनारी; जुहार;—हिन्दू मुसलमानोंका भयङ्कर युद्ध;—अकबरकी जीत;—नगर निवासियोंकी हत्या;—उदयसिंहका उदयपुर स्थापित करना;—मृत्यु।

राजापनमें जो मोहिनी शक्ति है उसे राजाके सिवा दूसरा कौन जान सकता है? जिस वनवीरने एक बार सरदारोंका कहना नहीं माना था, जिसने विक्रमजित्को सिंहासनसे उतारकर उस सिंहासन पर आप बैठनेमें महा पाप समझा था, उसी वनवीरका स्वभाव केवल कई घण्टे राज सिंहासन पर बैठनेसे एकदम बदल गया। राजापनको वह बड़े सुखकी चीज समझने लगा! पहले राजवंश पहननेमें उसने कुछ आगापीछा किया था, विक्रमजितके लिये बहुत दुःख और खेद प्रकाश किया था, परन्तु इन कई घण्टोंमें ही उसका यह भाव न मालूम कहां चला गया! भगवान् एकलिङ्गकी पूजा स्वीकार कर वह बारबार मनही मन कहने लगा—"हे भगवन्! आपहीकी कृपासे आज मैं मेवाड़के राजासनका अधिकारी हुआ हूं। ऐसा न हो कि अब यह सिंहासन मुझसे छूट जाय।" राजापनके मोहमें पड़कर वनवीर इतना भूल गया कि उसने इतना भी ध्यान न किया कि वह किसका राज्य भोग करने चला है! इसमें सन्देह नहीं कि सरदारोंने विक्रमजित्को हटाकर उसे उसकी जगह बिठाया था; परन्तु क्या वह सदा उस पदका अधिकारी रह सकता था? क्या वह जानता नहीं था कि संग्रामसिंहका

बालक पुत्र उदयसिंह शीघ्रही बड़ा होकर राजसम्मान भोग करनेके योग्य हो जायगा? बड़ा होनेपर क्या वह अपना हक छोड़ देगा?—भट्टग्रन्थोंमें इस विषयमें कोई बात साफ साफ नहीं लिखी है; परन्तु जब वनवीर लोगोंमें आदरणीय नहीं था तब यह बात आपही समझमें आ जाती है कि सरदारोंने तबतकके लिये उसे राजासन पर बिठाया था जबतक उदयसिंह बालिग न हो।

अस्तु; जिस दिनसे वनवीर चित्तौड़के सिंहासन पर बैठा उसी दिनसे उसने प्रतिज्ञा की कि उसके सुखके मार्गमें जो कईएक कांटे हैं वे सब जड़से काट दिये जाने चाहियें। पहला और प्रधान कण्टक छ: वर्षका बालक उदयसिंह था; अत: इस कण्टकके दूर करनेका निश्चय कर एकदिन वह रात आनेकी बाट देखने लगा। रात आई; उदयसिंह खा पीकर सोया था; उसकी धाश्री (दूध पिलानेवाली) पलंग पर बैठी उसकी सेवा कर रही थी। इतनेमें राजमहलके भीतरसे रोने चिल्लानेके शब्द सुनाई देने लगे। शब्द सुनकर वह चौंक उठी और पलंगसे उठ बैठी। उसी समय महलका एक बारी कुमार उदयसिंहका जूठन उठानेके लिये वहां गया और उसने कहा कि "बड़ा अनर्थ हो गया। वनवीरने राणा विक्रमको मार डाला!" धाश्रीका हृदय कांप उठा; वह समझ गई कि निठुर वनवीर केवल विक्रमजित्‌को मारकर शान्त नहीं होगा; अवश्यही कुमारको हत्या करनेके लिये आवेगा। मानों किसी अदृश्य देवताने आकर यह बात उसके कानोंमें कह दी। उसने राजकुमारके बचानेका उपाय तुरन्त सोच लिया। उस घरमें फल रखनेकी एक बड़ी टोकरी एक ओर पड़ी थी। बुद्धिमती धाश्रीने बड़ी सावधानीसे निद्रित कुमार उदयसिंहको उठाकर उसमें रख दिया और फलों तथा पत्तों इत्यादिसे अच्छी तरह ढंककर वह टोकरी उसी बारीके सुपुर्द की और उससे कहा, "अभी इसी समय इस टोकरीको लिये हुए दुर्गके बाहर चला जा।" विश्वासी बारीने ऐसाही किया। उसके चले जानेके बाद उसने कुमारकी जगह अपने बालकको सुलाया। इतनेमें वनवीर हाथमें तलवार लिये वहां पहुँचा और कुमारको ढूंढ़ने लगा। डरके मारे धाश्रीके प्राण उड़ गये; कण्ठ सूख गया; उससे बोला नहीं गया; कांपते कांपते उसने अपने बालककी ओर दृष्टि फेरी, जो कि कुमार उदयसिंहकी जगह सोया था। तत्काल निठुर वनवीरने उस बालक

को छातीमें छुरी घुसेड़ दी ! केवल एक बार चिल्लाया—केवल जरासा तड़पा—बस फिर बेचारे बालकमें कुछ भी दम नहीं था। अभागिनी धात्रीके सामनेही, देखते देखते, उसके हृदयका चिराग बुझ गया ! तोभी वह खुलकर नहीं रोई; चुपचाप आंसू पोंछती हुई पुत्रको क्रिया करके दुर्गके बाहर चली गई। महलकी स्त्रियां धात्रीके इस महत् और उदार कार्यके विषयमें कुछ भी न जान सकीं। उन्होंने केवल इतनाही जाना कि दुष्ट वनवीरने महाराज संग्रामसिंहके छोटे पुत्र उदयसिंहको मार डाला; अतएव वे गला फाड़ फाड़कर रोने लगीं। उनको किसी तरह मालूम नहीं हुआ कि हितकारिणी धात्रीने अपने पुत्रका खून कराके राणा सांगाके वंशको नष्ट होनेसे बचा लिया। ऐसे ऊंचे हृदयकी धात्रीका पवित्र नाम इतिहासमें स्थान पानेके योग्य अवश्य है। उसका नाम पन्ना था;—खीची राजपूत-कुलमें वह पैदा हुई थी। परन्तु यदि वह उदयसिंहकी रक्षा न करती, यदि उदयसिंहको वनवीर मार डालता, तो मेवाड़के लिये अधिक उत्तम बात होती; क्योंकि यदि ऐसा हो जाता तो उसके पापनामसे मेवाड़के प्रातःस्मरणीय राजाओंकी पवित्र नामावली कलङ्कित न होती।

प्यारे पुत्रकी अन्तिम क्रिया करके हतभागिनी पन्ना उस विश्वासी बारीको ढूंढ़नेके लिये दुर्गके बाहर निकली। चित्तौड़के पश्चिम ओर बेरीस नदीके किनारे वह नापित राजकुमारको लिये खड़ा इसकी बाट देख रहा था। सौभाग्यसे चित्तौड़दुर्गके भीतर उदयसिंहकी आंख नहीं खुली। खैर, वहांसे वे दोनों (अर्थात् बारी और पन्ना) भागकर देवल नगरमें गये और वीर बाघजीके पुत्र सिंहरावसे बालक उदयसिंहकी रक्षा करनेको कहा। परन्तु इस भयसे कि यदि पीछे वनवीर जान लेगा तो दण्ड देगा उसने ऐसा करना स्वीकार नहीं किया। तब वे वहांसे डूंगरपुर गये और वहांके शासनकर्त्ता रावल ऐशकर्णसे उन्होंने वैसाही कहा। परन्तु दुःखकी बात है कि वह भी निराश्रित राजकुमारको अपने यहां आश्रय न दे सका। बड़े दुःखके साथ उसने कहा—"मेरी तो इच्छा है कि राजकुमारको अपने यहां रक्खूं। पर क्या करूं ? वनवीर ऐसा दुष्ट है कि यदि उसको यह बात मालूम हो जायगी तो मेरे सम्पूर्ण वंशको वह नष्ट कर डालेगा। मुझमें इतनी शक्ति नहीं है कि मैं उसका मुकाबला कर सकूंगा।" अब यहां भी स्थान नहीं

लिया तब वे कुछ विश्वासी भीलोंसे रक्षित होकर दुर्गम अरावली पर्वतके मार्गसे होकर घोते हुए कमलमीर पहुँचे। बुद्धिमती पन्नाने ऐसा उपाय किया कि वहां उसका काम हो गया। दीपराके वणिककुलमें उत्पन्न हुआ आशाशाह नामक एक जैन राजपूत उस समय कमलमीरका अधिकारी था। पन्नाने उससे मिलना चाहा। आशाशाह उसकी प्रार्थना अस्वीकार न कर सका, अतएव अपने भवनमें उसने उसे बुलवाया। वहां पहुंचतेही इसने उदयसिंहको उसकी गोदमें डाल दिया और बड़ी नम्रताके साथ कहा—"अपने राजाके प्राण बचाइये।" परन्तु आशाने डर और घबराहटके साथ कुमारको गोदसे उतार देनेके लक्षण दिखाये। उसकी मां उस समय वहां उपस्थित थी। आशाशाहका ऐसा डरपोकपन देखकर उसने बहुत निन्दा की और फिर समझाकर कहा कि "स्वामिभक्त लोग मालिक की भलाई करनेमें कष्ट विपत्ति बाधाकी परवा नहीं करते। राणा सांगाका पुत्र तुम्हारा मालिक है; विपत्तिमें पड़कर आज वह तुम्हारे पास आया है। ऐसी दशा में इसे आश्रय देनेसे ईश्वरकी आशीर्वादसे तुम्हारा गौरव बढ़ेगा।" मां के उपदेशसे आशाशाहकी घबराहट दूर हो गई। कुमारको अपना भतीजा कहकर वह बड़े यत्नसे उसका पालन करने लगा। पन्नाकी इच्छा पूरी हुई। इसके बाद वह कमलमीर दुर्गसे बाहर चली गई।

सूर्यवंशीय राजा वीरवर संग्रामसिंहका पुत्र अपनेको छिपाये हुए आशाशाह बनियेके घर रहने लगा। यद्यपि आशा लोगोंके आगे उदयसिंहको अपना भतीजा बताता, परन्तु बहुतोंको इस बात पर सन्देह होता। उसके स्वर्गवासी पिताकी बरसीके दिन उसके भवनमें बड़े भारी भोजका प्रबन्ध हुआ। अनेक राजपूत निमन्त्रित होकर उसके घर गये। यथासमय लोग भोजन करने बैठे। भोजनकी चीजें परोसी जाने लगीं। इतनेमें उदयसिंहने एक परोसनेवालेके हाथसे दहीका बर्तन छीन लिया। इससे सबको आश्चर्य हुआ। उदयसिंहकी उमर उस समय ७ वर्षकी थी;—सात वर्षके बालकमें इतना तेज देखकर लोगोंको उसपर सन्देह हुआ। इतनी उमरतक उदयसिंह एक प्रकारसे अज्ञातवास करते थे; परन्तु यों छिपेछिपे कबतक रह सकते थे? अन्तमें एक दिन उनका असली हाल आपही प्रकाशित हो गया। झालावाड़का प्रसिद्ध सरदार किसी कार्यसे आशाशाहसे मिलनेके

लिये उसके घर गया । योग्य सम्मान और आदरके साथ उसके स्वागतका प्रबन्ध करनेका काम आशाशाहने उदयसिंहजीको सुपुर्द किया । राजकुमारने ऐसी उत्तमता और योग्यताके साथ यह कार्य निबाहा कि सरदारको उनके विषयमें बहुत सन्देह हुआ । उदयसिंहके व्यवहारोंको देखकर उसे निश्चय हो गया कि यह कभी आशाशाहका भतीजा नहीं है ।—यह वृत्तान्त धीरे धीरे चारों ओर फैल गया । मेवाड़ और उसके आसपासके राजे सरदार सामन्त आदि बड़े आनन्दित होकर वीरवर सांगाके पुत्रका अभिवादन करनेके लिये आने लगे । चण्डका प्रतिनिधि सालुम्ब्राका साहीदास, केलवाका जग्गो, बागोरका सांगा आदि चूंडावत गोत्रके सब सरदार आये । इनके अतिरिक्त कोठेरिया और बेदलाके चौहान, बिजौलीके प्रमार, सांचोरके पृथ्वीराज और जैतावत लूनकर्ण प्रसन्नतापूर्वक कमलमीरमें उपस्थित हुए । इसके बाद हितकारिणी धायीने राजकुमारका जीवन बचानेवाले विश्वासी बारीके साथ आकर आरम्भसे अन्ततक सब हाल कह सुनाया जिससे सबका सन्देह मिट गया ।

उसी दिन कमलमीरके विशाल सभाभवनमें एक दरबार हुआ । विश्वासी आशाशाहने सबके सामने राजकुमारका सच्चा परिचय देकर अपनी जिम्मेदारीसे छुटकारा पाया और फिर कोठेरियाके वृद्ध चौहान सामन्तको उनको सौंप दिया । यह व्यक्ति सब गूढ़ बातें अच्छी तरह जानता था, अतएव उसे इस विषयमें सन्देह नहीं हुआ । उदयसिंह वणिक् आशाशाहके घरमें थे यह कहकर सम्भव था कि पीछे कोई सन्देह करता इस कारण उन्होंने आशाशाहके साथ बैठकर एक बर्तनमें भोजन किया । इतना काम हो जानेके बाद सबको पूरी तरह विश्वास हो गया । वीरवर संग्रामसिंहके वंशधरको पाकर सब लोग बहुतही आनन्दित हुए । उनकी आनन्दध्वनि अनन्त आकाशके मार्गसे दूर चित्तौड़की ओर उड़ गई । चित्तौड़के सिंहासन पर बैठे हुए दुष्ट वनवीरने भी वह ध्वनि सुनी । इससे उसका हृदय घबरा उठा और अकस्मात् सिंहासन कांप गया ! इसके बाद अनिगुल सरदार अखिलराजने उदयसिंहके साथ अपनी कन्याका विवाह करना चाहा । पहले उदयसिंहने कुछ आगापीछा किया; क्योंकि अनिगुल मालदेवने जिस दिन बनवीरके साथ अपनी विधवा कन्याका विवाह किया था उसी दिनसे बनवीरने यह नि-

प्रण कर दिया था कि कोई गिह्लोट अनिगुह गोत्रवालोंसे साथ विवाहसम्बन्ध न करे। अबतक इस नियमका पालन होता चला आया था; परन्तु आज आश्चर्यको करने पर भी अन्तमें उदयसिंहने उस नियम पर ध्यान न देकर अनिगुह सरदारकी कन्या के साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया। शुभ विवाहका दिन स्थिर और अन्यान्य विषयोंकी बातें समाप्त होने पर राणा कुम्भके उसी विशाल सभाभवनमें मेवाड़के प्रधान प्रधान सामन्तों और सरदारोंसे पूजित होकर उदयसिंहने चित्तौड़ का राजतिलक ग्रहण किया।

ये सब समाचार शीघ्रही बनवीरके कानों तक पहुंचे। वह एकदम निराश हो गया;—सब बातें उसे पहेली सी जान पड़ने लगीं। उसे आश्चर्य हुआ कि जिस उदयसिंहका उसने अपने हाथोंसे खून बहाया, जिसको अपने सामने तड़प तड़पकर मरते देखा, वह फिर क्योंकर जी उठा! वह कुछ भी न समझ सका। सिंहासन पर बैठनेके बाद उसे बड़ी बड़ी आशाएँ हुई थीं; भगवान् एकलिङ्गसे उसने वरदानकी प्रार्थना की थी; परन्तु कुछ फल नहीं हुआ। मूर्खने पहलेही यह बात नहीं सोची कि अन्तमें उसे धोखा उठाना पड़ेगा। उसे विश्वास था कि निष्कण्टक राज्य मिल गया; इसी विश्वास पर सिंहासन पर बैठनेके दिनसे अनेक प्रकारके अत्याचार और उपद्रव करने लगा और सरदारोंके असन्तुष्ट और दुःखित होनेकी उसने कुछ भी परवा नहीं की। राजसिंहासन पाकर वह आपेसे ऐसा बाहर हो गया कि मेवाड़के सच्चे राजाओंके योग्य सम्मानका बलपूर्वक भोग करने लगा; यहांतक कि वीरवर चण्डके एक तेजस्वी वंशधरने उसका "दूना" अर्थात् जूठन नहीं खाया इस कारण उसने उसको बहुतही अपमानित किया।

राजा जो भोजन करता है उससे जो बचता है उसीको "दूना" कहते हैं। "दूना" पानेकी बड़े बड़े उच्च पदोंके सामन्तों और सरदारोंको लालसा लगी रहती है; पर सबकी लालसा पूरी नहीं होती। राणाके साथ बैठकर भोजन करने का जिन सरदारोंको अधिकार रहता है उनमेंसे कोई कोई कभी कभी "दूना" पा जाते हैं। सामयिक उत्सवों पर या और किसी समय राणाजी अपने भोजनागारमें ऊँचे दर्जेके सरदारोंके साथ भोजन करने बैठते हैं। सरदार लोग अपनी अपनी योग्यताके अनुसार क्रमसे उनके चारों ओर बैठनेको स्थान पाते हैं। उस

समय राणाजी बाहरी गम्भीर भाव छोड़कर सीधी सादी तरहसे सबसे बातें करते हैं। उस दिन जिसका भाग्य खुलता है वही उनका प्रसाद पाता है । राणाजी भोजन बनानेवालेके द्वारा चुने हुए व्यक्तिको "दूना" दिलवाते हैं। जब राजप्रसादसे भरा हुआ भोजनका बर्तन उस व्यक्तिको दिया जाने लगता है तब दूसरे सरदार आँखें फाड़ फाड़कर उसकी ओर देखते हैं और उसके सौभाग्यकी बार बार सराहना करते हैं । बड़े बड़े माननीय राजे भी "दूना" पाकर अपनेको कृतार्थ मानते हैं। एक समयकी बात है कि महाराज मानसिंहको वीरवर राणा प्रतापसिंहका दूना नहीं मिला, इससे मेवाड़में महा अनर्थ मच गया।

वनवीर शीतलसेनी नाम्नी किसी दासीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था; अतएव मेवाड़की पुरानी प्रथाके अनुसार वह 'पञ्चमपुत्र' माना जाता था। सङ्कटमें पड़ने पर सरदारोंने उसे चित्तौड़के सिंहासन पर बैठाया; पर इससे क्या वे उसका दूना ग्रहण कर सकते थे? वनवीरकी तो ऐसीही इच्छा थी पर कोई, उसकी यह इच्छा पूरी करना नहीं चाहता था । भला कौन अपनी कुलमर्यादा पर धूल डालकर दासीपुत्रका जूठन खाता । ऊपर लिखे चूंडावत सरदारको जब उसने अपना दूना दिया तब उस तेजस्वीने उसे लेना अस्वीकार करके कहा "बप्पारावलके सच्चे वंशधरके हाथसे यदि यह मिलता तो वास्तवमें गौरवकी बात होती, परन्तु शीतलसेनी दासीके पुत्रका जूठन लेना बड़े अपमानका विषय है।" सो, धीरे धीरे सरदार लोग वनवीरसे इतने रुष्ट हुए कि आखिर उदयसिंहको राजसिंहासन पर बैठानेके अभिप्रायसे वे कमलमीर गये। वे अरावली पर्वतके मार्गसे वहां जा रहे थे, इतनेमें क्या देखते हैं कि पांचसौ घोड़े और दस हजार बैल—जिन पर व्यापारकी बहुमूल्य वस्तुएं लदी हुई थीं—एक सहस्र महरवाल राजपूतोंके साथ आ रहे हैं। जांच करने पर उनको मालूम हुआ कि वनवीरकी कन्याके दहेजमें ये सब चीजें कच्छ प्रदेशसे आ रही हैं। यह सुनकर सरदारोंको बड़ा आनन्द हुआ, तुरन्त उन महरवाल रक्षकों पर क्रुद्ध सिंहोंकी तरह टूटकर उन्होंने उनको मार डाला और उनकी सब चीजें लेकर प्रसन्नतापूर्वक वे उदयसिंहके पास पहुंचे । ये सब वस्तुएँ अच्छेही काममें खर्च हुईं । झालावाड़के प्रसिद्ध सरदारकी कन्याके साथ उदयसिंहका विवाह होनेके समय वे बहुत काम आईं । यद्यपि वीरवर

इन्होंने जिस बातके लिये मना किया था वह की गई, परन्तु इससे मेवाड़का बड़ा उपकार हो गया। अनिगुह मालदेवके पुत्र वनवीरने गिह्लोटकुलको जो कलङ्क लगाया था आज उसके वंशधरने इस दासीपुत्र वनवीरके पाससे मेवाड़का सिंहासन बचाकर उस पिछले कलङ्कको मिटाया। झालावाड़ राज्यके अन्तर्गत बाल्हिक नामक स्थानमें यह शुभ विवाह हुआ। राजस्थानके दो सरदारोंको छोड़ शेष सब राजपूत, सरदार और सामन्त, इस शुभ अवसर पर आये और उन्होंने अनेक प्रकारकी भेंटकी वस्तुएँ दीं। जो दो सरदार नहीं आये उनमेंसे एकका नाम मालोजी है;—दूसरा सोलङ्कीकुलका कोई सरदार था, उसका नाम इतिहासमें नहीं मिलता। जब मेवाड़के सभी प्रधान प्रधान सरदार और राजस्थानके सब राजपूत राजे बड़े समारोह और हर्षके साथ इस शुभ कार्यमें सम्मिलित हुए तब दो साधारण सरदारोंके इसमें सहानुभूति न दिखानेका अवश्यही विशेष कारण था। उन्होंने विवाहमें न आकर इस प्रकार राजाका अपमान किया; अतएव इस अपमानका उचित बदला देनेके लिये सरदारोंने उन दोनों पर आक्रमण कर दिया। बचावका कोई उपाय न देखकर वे वनवीरकी शरणमें गये। उसने उनको आश्रय दिया और सरदारोंके विरुद्ध वह लड़ने भी चला; पर फिर भी वे बच नहीं सके। मालोजी मारा गया और सोलङ्की सरदारने विवश होकर अन्तमें उदयसिंहकी अधीनता स्वीकार की। वनवीरके सहायक धीरे धीरे कम हो गये; उसके भाई बन्धु सबने उसे छोड़ दिया; तौभी उसने आशा नहीं छोड़ी। उदयसिंहका सब उद्योग और प्रबन्ध व्यर्थ करनेका विचार कर वह राजधानीमें रहने लगा; पर कुछ कर न सका। अपने मन्त्री नवलसंग्रहकी सलाहसे राजकुमारके एक सहस्र सैनिकोंको उसने दुर्गमें प्रवेश करने दिया। अन्दर पहुंचतेही इन सैनिकोंने पहरेदारोंको मार डाला और किलेके ऊपर उदयसिंहकी जयपताका खड़ी की। तुरन्तही दूतों और नगरनिवासियोंने नगाड़े बजाकर उदयसिंहके सिंहासन पर बैठनेकी सूचना दी। पर किसीने वनवीरके साथ किसी प्रकारका अत्याचार नहीं किया। आखिर अपनी धन सम्पत्ति और परिवारके लोगोंको लेकर वह दक्षिण देशको चला गया। वहां उसका वंश बहुत फैला। नागपुरके भोंसले उसीके वंशधर हैं।

संवत् १५९७ (सन् १५४१—४२ ई०) में उदयसिंह चित्तौड़के सिंहासन पर बैठे। उनके राज्याधिकारी होनेपर राज्यके छोटे बड़े सब अत्यन्त प्रसन्न हुए;—नगरमें घर घर नृत्य गान आदि अनेक प्रकारके आनन्दोत्सव होने लगे। जिस कमलमीरकी प्रशान्त पहाड़ी चोटी पर उदयसिंहने छिपे छिपे अपने बालकपनके दिन बिताये थे, आज वहांसे बिदा होकर वे राजधानीमें आये। कमलमीरकी कोकिलकण्ठी राजपूत स्त्रियोंने मनोहर गीत गाते गाते उनको बिदा किया;—इधर चित्तौड़में स्वागतके समय भाट चारण और बन्दीगणोंने सुन्दर सङ्गीतसे स्तुति की। उस उत्सवके दिवस जो सङ्गीत गीत हुए वे अबतक सुन पड़ते हैं;—अब भी भगवती ईशानीके वार्षिकोत्सवके समय राजपूतमहिलाएं एकसाथ मिलकर उन गीतोंको गाती हैं। परन्तु वीरवर राणा संग्रामसिंहको शोचनीय मृत्युके बाद मेवाड़की जो दशा बिगड़ी वह फिर न बनी। रत्नकी उग्रता, विक्रमजितकी नासमझी, बनवीरकी अयोग्यता और अन्तमें उदयसिंहकी मानसिक कमजोरीने बड़ी हानि की। ऐसी घटना मेवाड़के इतिहासके लिये कलङ्क है; इससे वहांके एक पुराने नियमका खण्डन हुआ। एकके बाद दूसरे राजे बराबर मेवाड़में शासन करते आये थे; सिंहासन कभी शून्य नहीं हुआ था; परन्तु किसी आरजके बाद कोई कापुरुष राजा वहांके सिंहासनका अधिकारी नहीं हुआ था; परन्तु दुर्भाग्य से आज वैसाही हो गया! उदयसिंहका हृदय कमजोर था; मेवाड़ जैसे राज्यके कार्योंके चलानेके योग्य वे नहीं थे। उनकी कापुरुषता और अयोग्यताको यदि तौलिये तो राणा रत्न और विक्रमजितके सब दोष उनके मुकाबलेमें गुण मालूम होंगे। उनकी कापुरुषता और अयोग्यताके कारण मेवाड़का जातीय जीवनचरित भ्रष्ट हो गया। जो मेवाड़ अबतक अजेय माना जाता था उदयसिंहके कारण उसका गौरव लोप हो गया!

चन्द कविने लिखा है,—"स्त्रियां या नाबालिग लड़के जिस देशका शासन करते हैं उसकी कभी भलाई नहीं होती।" राजाओंमें जो गुण होने चाहियें वे उदयसिंहमें नहीं थे। यहांतक कि जो साहस और वीरता गिह्लोटकुलकी मुख्य बातें हैं, उनका एक रत्ती अंश भी उनमें नहीं था। अतएव वे एक नाचीज—बेकाम—राजपूतकुलकलङ्क थे! उदयसिंह ऐसे विलासी और आलसी थे कि यदि

वे शेरखान हुमायूंके शासनकालमें या पठानोंके झगड़ेके समय होते तो मेवाड़ राज्यको इतनी हानि न होती। परन्तु समग्र राजस्थानके दुर्भाग्यसे ऐसा नहीं हुआ। जिस वर्ष वे चित्तौड़की गद्दी पर बैठे और कमलमीर दुर्गमें आनन्दकी ध्वनि गूंज उठी उसी वर्ष मरुभूमिके अन्तर्गत अमरकोटसे मानों भारतकी राजलक्ष्मी सहसा रो उठी जिससे सूचना हुई कि अकबरका जन्म हुआ। इस सूचनासे मानों सारे भारतमें एक भूकम्पसा होगया और मेवाड़के घर घरसे रुलाई सुनाई दी। इस रुलाईका अन्त नहीं हुआ; क्योंकि अकबरने शीघ्र बड़े होकर सारी भारतभूमिको अधीनताकी ऐसी कठोर बेड़ीमें जकड़ा कि उससे शीघ्र छुटकारा नहीं हुआ। उसके कारण भारतका ऐसा शोचनीय अधःपतन हुआ कि फिर भारत सिर न उठा सका। समयके परिवर्त्तनसे उस बेड़ीका दबाव बहुत कुछ कम हो गया है; पर हिन्दुओंके अङ्ग प्रत्यङ्गमें उसके जो असंख्य घाव वर्त्तमान हैं उनको कौन मिटा सकता है? वे घाव केवल बाहरी नहीं हैं; किन्तु हृदयके बिलकुल भीतरी भागतक पहुंच गये हैं। नहीं मालूम कब स्वाधीनताकी सुखमयी हवा चलेगी और भारतवासियोंके ये घाव चंगे होंगे। जो जाति बहुत दिनोंतक खूब गौरव और स्वाधीनता भोगकर एक बार बुरी दशाको प्राप्त होती है वह क्या फिर कभी उन्नत हो सकती है? जिस पवित्र वीरत्वके प्रभावसे राजपूत लोग चित्तौड़के दुर्गको और ग्रीक लोग थर्मोपोलीके पहाड़ी पथकी रक्षा करते थे उस वीरताका जोश क्या उनके पराधीनतासे पीड़ित निर्जीव हृदयमें फिर आ सकता है?—यह हम नहीं बतला सकते;—इतिहास इस प्रश्नका उचित उत्तर देगा।

भारतकी विशाल मरुभूमिके बीचमें एक अच्छे स्थानमें अमरकोट स्थापित है। यह सिकन्दरके कहे हुए प्राचीन सोगदियोंकी * पुरानी निवासभूमि है। अकबरका जन्म इसी अमरकोटमें हुआ †। उसके पैदा होनेके समय उसका पिता हुमायूं बहुत बुरी दशामें था। उस समय राज्यसे च्युत होकर अपना जीवन बचानेके लिये वह यहां वहां भागता भागता फिरता था। जरा भी आशा या सम्भावना नहीं थी कि जो राज्य उसके हाथसे निकल गया है वह फिर कभी उसे

* यह प्रमार कुलकी सोढा शाखाके लोगोंका नाम है।

† सन् १५४२ ई०में अकबरका जन्म हुआ।

मिलेगा । तख्त पर बैठनेके बाद लगातार दस वर्षतक हुमायूंको अपने विरोधी भाइयोंसे झगड़ते रहना पड़ा। उसके भाई एक,एक स्वतन्त्र राज्यके अधिकारी थे; पर इतनेसे उनको सन्तोष नहीं था । लालचमें पड़कर वे बड़े भाईसे देहलीका तख्त भी छीन लेना चाहते थे; इस लालचका उनको उचित फल मिल गया। पठान वीर शेरशाह जोरों पर हुआ; उसने उन सबको नीचा दिखाया और अन्तमें हुमायूंको भी परास्त करके वह देहलीके सिंहासनका अधिकारी हुआ। इस प्रकार देहलीमें मुगलोंकी जगह पठानोंका आधिपत्य जमा ❋।

जिस दिन कन्नौजकी लड़ाईमें भारतका राजमुकुट हुमायूंके सिरसे उतर गया उस दिनसे उसके विजयी शत्रुने लगातार उसके पीछे पड़कर उसे बहुतही अधिक कष्ट पहुँचाया। हुमायूं जहां जाता वहीं दुःख पाता। जिस जगह वह गया वहीं उसके शत्रुने पहुँचकर उसपर आक्रमण किया। यमुनाके किनारेके सुन्दर आगरा नगरसे वह लाहोरको भागा; दुर्भाग्यसे वहां भी उसका छुटकारा नहीं हुआ। आखिर लाचार होकर परिवार और कुछ विश्वासी लोगोंके साथ वह सिन्ध में पहुंचा। रास्तेमें उसे जो कष्ट उठाना पड़ा उसका ठिकाना नहीं! उसे बिना खाये, बिना सोये, बिना विश्राम किये लगातार चला जाना पड़ता। उस समय उस अपरिचित दूर देशमें,किसीने उसे आश्रय नहीं दिया। दो एक हिन्दू राजाओंने दो एक दिनके लिये उसे अपने यहां रहने दिया पर पीछे निकाल बाहर किया। उसका भाग्य धीरे धीरे खराब दिशाको पलटे खाता गया; उसकी आशाओंके एकदम मिट जानेके लक्षण दिखाई दिये; पर तौभी वह निरुत्साह नहीं हुआ। साहस पर भरोसा करके जितने लोग उसके साथ थे उनको लिये हुए आकर उसने मुलतानसे समुद्रके किनारे तकके सिन्धुतीरके सब दुर्गों पर अधिकार करनेका उद्योग किया; पर सफलता नहीं हुई; उसके सब उद्योग व्यर्थ हो गये। इस संकटकी अवस्थामें कष्टों और दुःखोंसे घबराकर उसके साथी सैनिक

❋ कुछ समय पूर्व हम "हुमायूं और शेरशाह" नामक एक इतिहासमूलक काल्पनिक पुस्तक लिखते थे। उसके कोई १०० पृष्ठ लिख गये हैं। अब उस अधूरी पुस्तकको पूरी कर डालनेका विचार है। वह बड़ा रोचक उपन्यास होगा। (गं॰प्र॰गुप्त)

और नौकर विद्रोही हो गये। वह दोहरे सङ्कटमें पड़ा। जिन लोगोंने सब अव-स्थाओंमें उसके साथ रहकर उसकी समान कष्ट सहा, बराबर दुःख उठाया, उन-को छूटते देखकर उसे बड़ा रञ्ज हुआ! सबने उसका साथ छोड़ दिया! आखिर उनसे अलग होकर वह एक ओर चला। उसके साथियोंकी जिधर इच्छा हुई उधर वे चले गये। कोई भूख प्यास थकावटके कारण रास्तेमें ही समाप्त हो गये; किसीने हिन्दुओंके यहां आकर नौकरी करली। परन्तु हुमायूंकी क्या दशा हुई? जो एक दिन सारे भारतवर्षका अधीश्वर था, जिसके हाथमें असंख्य नर नारियोंके भाग्य की डोरी थी, वह आज अपने बचावके लिये अनाथोंकी तरह द्वार द्वार भटकता फिरता था। धन्य परमेश्वर!—धन्य तुम्हारी लीला। राजा पलका भिखारी क्योंकर बन जाता है उसका यह प्रत्यक्ष उदाहरण है!

आखिर घबराये हुए हुमायुंने जैसलमेर और योधपुरके राजाओंसे आश्रयके लिये प्रार्थना की; परन्तु दुःखकी बात है कि इन दोनों जगहोंमेंसे कहीं उसे आश्रय नहीं मिला। सहायता करना तो दूर था, सुनते हैं कि योधपुरके क्रूर अधिकारी मालदेवने इस सङ्कटकी दशामें उसे कैद करनेका उद्योग किया! हम नहीं कह सकते कि यह बात कहांतक सच है; क्योंकि भट्टग्रन्थोंमें इस विषयमें कोई बात नहीं पाई जाती; केवल फारसीके इतिहास 'फरिश्ता' से यह वृत्तान्त संग्रह करके लिखा गया है। अस्तु, यह रंगढंग देख और अपनी अद्भुत परिणाम-दर्शितासे भविष्यकी बातें विचारकर हुमायूं वहांसे लौटकर फिर मरुभूमिमें पहुंचा। उस जलते हुए रेगिस्तानमें उसे और भी कष्ट सहने पड़े। यदि ये सब कष्ट और दुःख अकेले उसीको सहने पड़ते तो विशेष हर्ज नहीं था; क्योंकि अपने पितासे वह सीख चुका था कि जब विपत्ति आती है तब उसे धैर्य्यके साथ सहना पड़ता है;—परन्तु बात यह थी कि जिनके भरोसे उसका जीवन था, जिन्होंने पहले कभी सूर्यका भी मुख नहीं देखा था, दुर्भाग्यसे आज उन्हीं कोमलाङ्गी बेगमोंको जलती हुई रेतमें दौड़ना पड़ा! भला उनको ऐसी दशामें देखकर किसको दया न आती? कौन सहृदय आदमी उनके लिये दो बूंद आंसू बहानेमें हुमायूंका साथ न देता? परन्तु इतने भयानक सङ्कटमें भी हुमायूं घबराया नहीं। यदि घबराता या अधीर होता तो कदाचित् वहीं रेगिस्तानमें परिवारके सहित नष्ट हो जाता। पर वह

धीर, वीर, समझदार और साहसी था, इसीलिये सब सङ्कटोंसे निकलकर पुनः दिल्लीका सिंहासन पा सका। उसके गुणोंका विचार करनेसे उसकी इस दुर्दशाके लिये आंसू बहाये बिना रहा नहीं जाता। उसकी दुर्दशाका हाल फारसीके "तारीख फरिश्ता" में * बड़े अच्छे ढङ्गसे लिखा हुआ है। उक्त ऐतिहासिक ग्रन्थमें लिखा है कि इस दुर्दशासे घबराकर हुमायूं अमरकोटमें गया। वहांके अधिकारी ने बड़े प्रेमसे उसे अपने यहां स्थान दिया। इसी जगह प्रसिद्ध अकबरका जन्म

* 'दोपहर रातके समय घोड़े पर सवार होकर हुमायूं अमरकोटकी ओर चला। यह स्थान ठट्ठेसे एकसौ कोसकी दूरी पर है। रास्तेमें थकावटसे पस्त होकर उसका घोड़ा मर गया। तब दूसरा उपाय न देखकर उसने तिर्दीबेग नामक अपने एक साथीसे घोड़ा मांगा। पर साथीने इस दीनदशामें उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया!—उसे तनिक भी दया न आई! इधर शत्रुके सिपाही उसे ढूंढते हुए पास आ पहुंचे। तब लाचार होकर बचाव करनेके लिये वह एक ऊँट पर सवार हुआ। इतनेमें नादिम कोकाने अपनी वृद्धा मांको घोड़ेसे उतारकर वह घोड़ा हुमायूंको दिया और ऊँट पर अपनी मांको सवार कराके स्वयं उसके साथ साथ पैदल जाने लगा।

"जिस प्रान्तसे वे भागे जाते थे वह जलता हुआ रेगिस्तान था। वहां कोई कुआं तालाब या जलाशय नहीं था इसलिये प्यासके मारे सैनिकोंको बहुत कष्ट होने लगा। प्यासकी तेजीसे कुछ पागल हो गये और कोई कोई तो मर गये! वह समय बड़ा भयानक था; प्यासे सिपाही इधर उधर तड़पते और चिल्लाते थे! इस दुर्दशाके समय खबर आई कि शत्रुओंकी सेना बहुत निकट आ पहुंची है। ऐसी घोर विपद्की अवस्थामें भी धीर हुमायूं बिलकुल नहीं घबराया; बल्कि उत्साहके साथ अपने सैनिकोंसे कहने लगा—'जो लड़ सकते हों वे तो यहां रहें और बाकी लोग चीजों और औरतोंको लेकर आगे बढ़ें।"—परन्तु शत्रु नहीं आये; तब हुमायूं भी अपने परिवारवालोंसे मिलनेके लिये आगे चला।

"रात अन्धेरी थी। जो सिपाही हुमायूंके पीछे रह गये थे वे रास्ता भूल गये और प्रातःकाल शत्रुओंके कुछ सैनिकोंने उनपर आक्रमण कर दिया। उनमें शेखअली नामक एक साहसी व्यक्ति था। उसने केवल २० वीरोंके साथ शत्रुओंका मु-

हुआ। अकबरके जन्मके थोड़ेही दिन बाद हुमायूं ईरान भाग गया। कहा जाता कि वह ज्योतिषशास्त्रका बड़ा ज्ञाता था; बल्कि भविष्यकी गणना करनेमें कोई ज्योतिषी उसकी बराबरी नहीं कर सकता था। परन्तु दुःखकी बात है कि इस ज्ञानकारीसे उसने काम नहीं लिया। यदि वह ऐसा करता, यदि गणना करके मालूम कर लेता कि शीघ्र सब विपत्तियां उसके सिरसे टल जायेंगी और फिर उसके अच्छे दिन आवेंगे, तो उस समय कभी ईरानको न भागता।

कावला किया। उसके एकही तीरसे शत्रुओंका सेनापति मारा गया। सरदारके मारे जातेही सब शत्रुसैनिक छत्रभङ्ग होकर इधर उधर भागे। विजयी मुगलोंने उनका पीछा करके उनके घोड़ों और ऊँटोंको लूट लिया। इसके बाद वे अपने रास्तेपर लौटे। कुछ दूर आगे बढ़ने पर उन्होंने देखा कि हुमायूं एक कुएंको जगतपर बैठा है। शेखअली अपने मालिकको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उससे सब हाल उसने कहा।

"दूसरे दिन हुमायूं सबके साथ वहांसे अमरकोटको रवाना हुआ; पर दो दिनतक रास्तेमें कहीं अन्न नहीं मिला इसलिये सब लोग फिर बड़े कष्टमें पड़े। तीसरे दिन एक कुवां देख पड़ा; पर वह इतना गहरा था कि पानी निकालनेमें बड़ी देर हुई। हुमायूं या उसके साथियोंके पास एकही ढोल था, इसलिये ढोल बजाकर सब सिपाहियोंको इस बातकी सूचना कर दी गई कि पानी निकाल कर बारी बारीसे सबको पिलाया जावेगा। परन्तु किसीमें रुकनेकी ताब कहां थी? सब प्यासके मारे छटपटा रहे थे! सभी चाहते थे कि सबसे पहले हम पीयें। डोलके कुएँसे बाहर निकलते न निकलते दस बारह आदमी उसपर टूट पड़े; यहांतक कि रस्सी टूट गई और कई अभागे कुवेंमें गिरकर समाप्त हो गये! सब दुःखित हुए; निराश होकर प्यासके मारे चिल्लाने और तड़पने लगे। कोई कोई तो जीभ निकालकर वहीं बालूपर लेट गये! किसी किसीने पागलोंकी तरह कुवें में कूदकर प्राण दे दिये!—हाय! अपने साथियोंकी यह दुर्दशा देखकर अभागे हुमायूंको कितना दुःख हुआ होगा!

"इसके बाद दूसरे दिन एक तालाब मिला; पर दुर्भाग्यसे उसके कारण और भयङ्कर कष्ट हुआ। ऊंटोंको बहुत दिनोंसे एक बूंद भी जल नहीं मिला था; अत-

हुमायूंने अपने पिता बाबरसे जो संसार-नीति सीखी थी उसकी शिक्षा अब उसने अपने पुत्र अकबरको दी। हुमायूंके भाग्यने ऐसे ऐसे पलटे खाये कि बहुत दिनोंतक वह एक जगह स्थिर होकर न बैठ सका। भारतवर्षसे भागनेके बाद १२ वर्षतक वह देशदेशान्तरमें भटकता फिरा। कभी ईरानमें, कभी अपने पूर्वपुरुषोंके प्राचीन स्थानमें, कभी कन्दहारमें, कभी काश्मीरमें,— योंही जहां जहां उसका भाग्य ले गया वहां वहां वह गया। इन बारह वर्षों के बीचमें भारतके आधिपत्यके विषयमें पठान उत्तराधिकारियोंमें खूब झगड़ा हुआ। इस थोड़े समयमें क्रमसे छः पठान अधिकारियोंने देहलीके तख्त पर बैठकर शासन किया। इन छःहों अधिकारियोंके समयमें उत्तराधिकारकी पुरानी विधिका बिलकुल बरताव नहीं हुआ। उनमें जो जबर्दस्त हुआ उसीने गद्दी दूसरेसे छीनकर अपने अधीन की। जिस समय हुमायूं काश्मीरके निकट था उस समय सिकन्दर देहलीके सिंहासन पर बैठा हुआ अपने भाइयोंसे लड़ रहा था। उसे घराऊ झगड़ेमें फंसा देखकर हुमायूं अपना मतलब निकालनेके लिये अवसर ढूंढ़ने लगा। थोड़ेही दिनोंमें अच्छा अवसर आ गया। उसने देखा कि घराऊ झगड़ा धीरे धीरे सिकन्दरको एकदम नाश कर डालेगा। तब तुरन्त सैनिकोंके सहित सिन्धुनद पार करके वह

एव पानी देखतेही वे बड़े जोरसे दौड़े और इतना अधिक जल उन्होंने पीया कि प्रायः सब मर गये! यह दशा देखकर भी हुमायूंके साथी नहीं डरे। उन्होंने भी खूब जल पीया। पीतेही उनके पेटमें एक तरहकी भयानक पीड़ा उत्पन्न हुई और देखते देखते आध घण्टेके अन्दर कईएक उसी स्थानसे इस संसारसे बिदा हो गये!

"इस दुर्घटनाके बाद बचे हुए लोगोंके साथ शोकार्त हुमायूं अमरकोटमें पहुँचा। वहांका अधिकारी दयावान् और सहृदय था। उसने इन लोगोंको अपने यहां स्थान दिया और जहांतक हो सका इनके क्लेशोंको दूर करनेका उद्योग किया।

+ "इसी अमरकोटमें ९४९ हिजरी ५ वीं रज्जब रविवारको बेगम हमीदा बानूके गर्भसे शाहजादः अकबर पैदा हुआ। पुत्रका मुख देखकर हुमायूं सब दुःख भूल गया। काहेनिक परमेश्वरका उसने धन्यवाद किया और अमरकोटके राजाहीके आश्रयमें अपने परिवारको छोड़कर उन्हींकी सेनाकी सहायतासे वह शत्रुसे लड़ने चला।" [फ़ारसी भाषाके इतिहास "फ़रिश्ता" से]

उसपर आक्रमण करनेके लिये चला । लड़ाईके बाजोंका शब्द सुनकर पठान अधिकारी सिकन्दरकी आंखें खुलीं । वह समझ गया कि घराऊ झगड़ेके कारणही यह विपत्ति सिरपर आई । वास्तवमें आपसका झगड़ा ऐसाही होता है और इससे दूसरोंको अपना लाभ करनेका अवसर मिलता है। आखिर वह भी सेना लेकर पहुंचा । सरहिन्द नामक स्थानमें दोनों दलोंका सामना हुआ । हुमायूंने अपने बालक पुत्र अकबरको इस लड़ाईमें सेनापति बनाकर युद्ध करनेकी अनुमति दी। शीघ्र लड़ाई आरम्भ हुई । एक ओर पठान सिपाही समुद्रकी तरह बहुत दूरतक फैले थे और दूसरी ओर थोड़ेसे मुगल वीर अपनी रणकुशलताके भरोसे पर लड़ते थे । धीरे धीरे लड़ाई बहुत भीषण हो गई । हुमायूंकी ओरका सेनापति उसका बालक पुत्र अकबर था;—उसकी उमर केवल १२ वर्षकी थी । इस अनुभवी सैनिकोंने पहले अकबरकी तेजस्विता देखकर लड़कपनका जोश समझा था, पर ज्यों ज्यों लड़ाई बढ़ती गई त्यों त्यों उसकी फुर्ती साहस और तेजी भी उन्नति करती गई । यह देखकर सबके हृदयोंमें जोश भर गया; सब अद्भुत वीरताके साथ शत्रुओं की ओर बढ़े । उनके—उन थोड़ेसे लोगोंके—प्रचण्ड साहसके आगे अनगिनत पठान सैनिक विमर्दित और खण्ड विखण्डित होकर मारे गये !

अकबरकी जीत हुई । यह जीत उसके भविष्य गौरवकी सूचना थी । इतनी कम उमरमें ऐसा साहस दिखानेसे उसके दादा बाबरकी तरह उसका भी नाम बहुत दूर दूरतक प्रसिद्ध हो गया । बाबरने भी इतनीही कम उमरमें अनेक विघ्न विपत्तियोंको टालकर अपने पैतृक राज्य फरगना पर अपनेको दृढ़ रखा था। बाबर जैसे वीरका पुत्र और अकबर जैसे तेजस्वीका पिता होकर हुमायूंने भी अपनी योग्यताका परिचय दिया । उसने देहलीके सिंहासन पर पुनः अधिकार प्राप्त किया; परन्तु दुःखकी बात है कि बहुत दिनोंतक इस संसारमें न रह सका। देहलीके तख्तपर पुनः अधिकार पानेके थोड़ेही दिन बाद एक दिन अपने पुस्तकालयकी सबसे ऊँची सीढ़ीसे वह गिरकर मर गया । उसकी मृत्युके कारण पर विचार करनेसे विलायतवालोंकी एक बड़ी भूल प्रकट हो जाती है । अनेक पश्चिमी विद्वान् पूर्व देशोंके राजाओं या बादशाहोंको मूर्ख और विलासी बतलाते हैं; पर यह उनकी भूल है । पूर्व देशके अधिकारियोंकी भीतरी अवस्थाकी अच्छी तरह

जाँच किये बिनाही वे इनपर मनमाने दोष लगा डालते हैं। हुमायूं पूर्वदेशके दू-सरे राज्याधिकारियोंकी तरह केवल विद्याका अनुरागी नहीं था; बल्कि इसकी विद्वत्ता और पाण्डित्यका विशेष परिचय मिलता है। यदि इसके वंशके लोगोंकी विद्वत्ता और योग्यताका उस समयके पश्चिमी राज्याधिकारियोंकी योग्यतासे मुकाबिला किया जाय तो पश्चिमवालोंमें कम गुण मिलेंगे। यहांतक कि प्रसिद्ध रानी एलिजाबेथ और फ्रांसके अधिकारी चतुर्थ हेनरीके भी गुण, जिनके विद्या-प्रेमकी पश्चिम देशोंमें धूम है, इनसे न्यून मालूम होंगे। खासकर आक्सतीसके किनारेके देशोंमें जो राजे उत्पन्न हुए थे वे अनेक प्रकारकी विद्याओंमें निपुण थे। क्या इतिहास, क्या पुरातत्त्व, क्या काव्य, क्या ज्योतिष, क्या राजनीति, क्या धर्म-नीति, क्या समाजनीति, क्या रणनीति सभी प्रकारका विद्याबल उनमें था, जिसका स्पष्ट परिचय मिलता है। इनकी विद्वत्ताका विचार करनेके समय हृदय आपसे आप प्रीति और भक्तिरसमें डूब जाता है।

हुमायूंकी शोचनीय मृत्युके बादही अकबर देहलीके तख्त पर बैठा; परन्तु थोड़ेही दिन बाद शत्रुओंने देहली और आगरा छीनकर उसे राज्यके बाहर निकाल दिया। तब लाचार होकर वह पञ्जाबके एक दूसरे प्रान्तमें चला गया। वहां उस-की हीन दशा दूर हुई; बहुत शीघ्र वीर बैरमखांने लड़कर उसका राज्य पुनः उसे दिलवाया। बैरमखां हिन्दुस्थानका 'सली' * था। उसकी वीरता और मुस्तैदीके प्रभावसे अकबर अपना सिंहासन पर्वतकी तरह दृढ़ कर सका। कालपी, चन्देरी, कालिञ्जर, समग्र बुन्देलखण्ड और मालवा, थोड़े समयमें उसके बड़े राज्यमें मिल गये। १८ वर्षकी उमरमें वह सबसे बड़ा अधिकारी था।

* मुगल बादशाह अकबर और फ्रान्सका अधिकारी हेनरी चतुर्थ तथा बैरमखां और फरांसीसी मन्त्री सली ये चारों समसामयिक थे अर्थात् एकही समयमें विद्य-मान थे; बल्कि दोनों राज्याधिकारियों और मन्त्रियोंकी चाल चलन भी प्रायः एकही समान थी। बैरमखां बड़ा तेजस्वी और न्यायी था। स्वयं लोभ न कर उसने मुगलसाम्राज्य दृढ़ किया था; पर पीछे राजविद्रोही हो गया था। इस अपराधसे वह देशके बाहर निकाला गया। आखिर एक घातकने धोखा देकर उसे मारा। इसकी जीवनी पढ़ने योग्य है जो अवकाशानुसार कभी लिखी जायगी।

कुछ दिन बाद अकबरने राजपूतोंके विरुद्ध लड़ाई ठानी और सबसे पहले मारवाड़की ओर वह चला । राठौड़ मालदेवने हुमायूंको कष्टकी दशामें कैद करना चाहा था, कदाचित् उसीका बदला लेनेके लिये इसने यह आक्रमण किया। मारवाड़में मेरता एक अच्छा नगर है । समृद्धिमें यह मारवाड़का दूसरा नगर माना जाता है। अकबरने इसी नगर पर आक्रमण किया। इसकी वीरता देखकर अम्बरका अधिकारी भारमल्ल अपने पुत्र भगवान्दासके सहित इसके सामन्तोंमें मिल गया । उसपोकने इतनाही करके अपनी स्वाधीनता नष्ट नहीं की, बल्कि अकबरको अपनी कन्या † देकर अपना कुल कलङ्कित किया! जो राज्य और जो सुख पवित्र कुलगौरव और प्राणोंसे भी अधिक प्यारी स्वाधीनता नष्ट करके मिले वे राज्य और वह सुख किस कामके ? लाख कष्ट उठाना अच्छा है पर ऐसा करना उचित नहीं । सौभाग्यकी बात है कि भारमल्ल और राठौड़ अधिक दिनोंतक पराधीनताकी बेड़ी पहने न रहकर स्वाधीनता पानेके लिये उद्योग करने लगे । इतनेहीमें अकबरके यहां उजबक सरदार विद्रोही हो गये । अकबरको सबसे पहले इस विद्रोहके शान्त करनेके उपाय करने पड़े। अतएव राजस्थान पर विजय प्राप्त करनेकी उसे जो इच्छा थी वह कुछ दिनोंके लिये रुक गई। इन गड़बड़ोंके मिट जानेके बाद उसने आकर चित्तौड़पुरी पर आक्रमण किया।

जिस राजाका राज्य उचित नियमोंके अनुसार अच्छे ढगसे शासित होता है, जिस राजाको किसी प्रकारका बुरा लोभ या दुराकांक्षा नहीं होती, जिस राजाके मन्त्री या सलाहकार बुद्धिमान् और सच्चरित्र होते है, जो राजा सच्ची राजनीतिके अनुसार चलकर अपने मान मर्यादा गौरवको निवाह ले जाता है,—वही राजा "प्रजापाल" कहे जानेके योग्य है और उसके राज्यको स्वर्गीय सुखका निवासस्थान तथा शान्तिका कुसुमोद्यान कहना चाहिये। परन्तु जो राजा स्वेच्छाचारी होता है, जो प्रजाके सुख दुःखकी चिन्ता नहीं करता, प्रजाका खून सोखनेहीको राजापन समझता है,—वह अधम है, नीच है, 'प्रजापाल' नामको कलङ्कित करनेवाला है, स्वार्थी पिशाचका पापमय अवतार है।—ऐसे राजाका राज्य घड़ीके लंगरकी त-

† हो सकता है कि भारमल्लने कन्याके बहाने अकबरको दासी देकर अपना बचाव किया हो।

वह अस्थिर रहता है; वह कभी सुख भोग नहीं सकता । यदि सौभाग्यसे राजा प्रजाहितैषी हो और उसका राज्य उन्नति करे तौभी क्या भरोसा ? कालचक्रके परिवर्त्तनसे सम्भव है कि उसका कोई प्रजापीड़क स्वेच्छाचारी उत्तराधिकारी हो जिसके कारण सुख शान्ति और आरामकी सभी बातें नष्ट हो जावें !—यह संसार का सदाका नियम है। अकबर और उदयसिंहके राजत्वमें इस नियमके दो भिन्न भिन्न रूप दिखाई देंगे।

उदयसिंह जिस उमरमें मेवाड़के सिंहासनपर बैठे उसी उमरमें अकबरने भी देहलीका राजासन प्राप्त किया *। हुमायूंके मरनेके बाद जिस दिन १२ वर्षके बालक अकबरने देहलीका सिंहासन प्राप्त किया उसी दिन उसके कुलका भाग्य खुल गया। परन्तु उसके हृदयमें शान्ति कहां थी? शान्ति तभी मिलती जब उसकी अभिन्न आशाएं पूरी होतीं। वह ऐसे ऊंचे दर्जे पर था कि उसकी सब आशाओं के पूरे होनेकी सम्भावना थी; पर मार्गमें अनेक विघ्न और रुकावटें भी थीं। बालक अकबर उस समय जानता नहीं था कि वे सब विघ्न और रुकावटें दूर होंगी या नहीं—और निष्कण्टकभावसे उसे राज्यशासन करनेका अवसर मिलेगा या नहीं। उसे तनिक भी खबर नहीं थी कि विधाता अकेलेमें बैठकर बड़े प्रसन्न मनसे उसके भाग्यकी लिपि लिख रहा है और आशा पूरी करनेवाली देवी आनन्दकी मूर्त्ति धारण किये उसके पास खड़ी है। ईश्वरकी कृपासे वीर बैरमखां और पण्डित अबुलफजल जैसे विलक्षण बुद्धिके मन्त्री और सहायक भी उसे मिल गये। अकबर और उदयसिंह दोनों ठीक एकही समय अपने अपने पिताके सिंहासन पर बैठे; पर दोनोंके चालचलन रंगढंगमें बहुत अन्तर था। अकबर लड़कपनसे विपत्तिमें था; भाग्यचक्रके घुमावमें पड़कर छोटी उमरमें ही उसे संसारके नये नये रूप देखने पड़े थे; अनेक प्रकारकी कठोरता और कठिनाइयां उसे सहनी पड़ी थीं; ऐसी अवस्थामें उसमें जो जानकारी और अनुभवकी बातें हो सकती थीं वे उदय सिंहमें कैसे हो सकती थीं?—उदयसिंहको बाल्यावस्थासे अकेलेमें रहना पड़ा था; कमलमीरके जंगलोंसे ढंके पर्वतोंके सिवा दूसरा कोई दृश्य उनको दिखाई नहीं दिया था; उस पहाड़ी किलेके राजमहलमें रहकर उन्होंने उसके बाहरकी दशा

* दोनोंही तेरह तेरह वर्षकी उमरमें अपने अपने पिताकी गद्दी पर बैठे थे।

का कभी विचार भी नहीं किया था; अतएव संसार-नीति क्या चीज़ है यह वे जानते नहीं थे। जिनको अपने जन्मका भी वृत्तान्त मालूम नहीं था, बचपनसे जो दूसरे के यहां आदरके साथ लालित पालित हुए थे, जिनपर क्षणभरके लिये भी कभी विपत्तिका अंकुश नहीं पड़ा था, संसारकी गहरी नीतिका जिनका कभी सामना भी नहीं हुआ, भला उनको इस दुनियाके व्यवहारोंके विषयमें जानकारी क्योंकर हो सकती है? इस अज्ञानके कारण उदयसिंहको बहुत कष्ट भोगने पड़े। उन्होंने सोचा था कि इसी तरहके सुख और स्वच्छन्दतामें उनके सब दिन बीत जायँगे। इसी नासमझीके कारण राज्यके कामोंमें उनका मन नहीं लगता था;—वे जान नहीं सके कि राजाकी जिम्मेदारी कितनी बड़ी है और राजाके सिरपर कितने बोझ है। राज्य क्या आनन्द और विलास करनेके लिये होता है? जिस राजत्वके साथ सहस्र सहस्र लोगोंके भाग्यकी डोरी बँधी रहती है वह क्या खिलवाड़की चीज है? कौन समझदार आदमी ऐसा कह सकता है? चाहे दूसरा कोई ऐसा न समझे या कहे पर उदयसिंहने तो ऐसाही समझा था। केवल ऐसा समझाही नहीं था, बल्कि इसी समझके अनुसार काम भी किया था। यद्यपि पिछली लड़ाईमें बहादुर की सेनाओंसे युद्ध करके चित्तौड़के बड़े बड़े अनुभवी मन्त्री इस संसारसे चले गये थे, तौभी चित्तौड़की राजनीतिक जीवनी अभीतक एकदम नष्ट नहीं हो गई थी;—अब भी यदि राणा उदयसिंह चाहते तो योग्य राजनीतिज्ञ व्यक्तियोंसे राजनीति की शिक्षा ले सकते थे; उनके उत्साह उत्तेजन और सुशिक्षणसे उनके हृदय का अन्धकार दूर हो सकता था! यदि ऐसा होता तो वे कापुरुष न कहे जाते;—पर उनका दुर्भाग्य। ईश्वरने उनको राजगुणोंसे विभूषित नहीं किया; नहीं तो वे ऐसी नासमझी क्यों करते कि समझदार और बुद्धिशाली लोगोंकी अच्छी सलाहों पर ध्यान न देते? वे कापुरुष थे। राजा होनेसे क्या होता है जबतक राजोचित गुण न हों! उदयसिंहके हृदयमें कुछ दूसरीही बात थी; उनका रंगढंग कुछ दूसराही था; एक दूसरीही शक्तिसे उनके हृदयके यन्त्र चलाये जाते थे। वह शक्ति नाश करनेवाली थी। एक रखैलीने उनके हृदयपर अधिकार जमाया था। वही उनकी सलाहकार थी; वही उनकी साथन थी; वही उनकी बुद्धि विद्या शिक्षा धारणा सब कुछकी मालिक थी! अधिक क्या कहा जाय,—वे उसके दास

है। उनके भाग्यकी डोरी उन्ही पिशाचिनीके हाथोंमें थी।—उदयसिंह वेश्याके हाथ थे! शिशोदकुलकेसरी वीरवर बप्पारावलका वंशधर—मेवाड़वासियोंका राजा—शत्रुओंका अहङ्कार तोड़नेवाले राणा संग्रामसिंहका पुत्र—वेश्याका आज्ञाकारी हो रहा था! आज वही रण्डी सब कुछ थी! मूर्ख राजा उसी पर भरोसा करके पापमें डूब रहे थे! उनको इस तरह आलसी, बेकाम और पापमें डूबा हुआ देख कर अकबरने अपना मतलब निकालनेका अच्छा अवसर पाया। उसने आकर चित्तौड़का गौरव नष्ट कर डाला;—उदयसिंहको उनकी अयोग्यताका खूब फल चखाया।

अपना राज्य छोड़ और इतनी दूर अर्थात् पवित्र भारतवर्षमें आकर बाबरने जो बीज बोया कौन जानता था कि वह किसी समय बहुत बड़ा वृक्ष हो जायगा! बाबरका बोया हुआ बीज हुमायूंके यत्नसे अङ्कुरित हुआ; परन्तु यदि अकबर उस अङ्कुरको जल दे देकर न सींचता तो वह अवश्य नष्ट हो जाता। अतएव अकबरनेही भारतवर्षमें मोगल साम्राज्य दृढ़ किया;—असलमें वही मोगलराज्यका प्रतिष्ठाता हुआ। उसीने राजपूतोंका भाग्य बिगाड़ा; उनकी स्वाधीनता नष्ट करनेका उद्योग किया। जिस स्वाधीनताको इससे पहले कोई अड़से नष्ट नहीं कर सका था, उसीको उसने वैसा किया। हिन्दुओंको स्वतन्त्रताके सबसे सुन्दर महलसे निकालकर उसने दुःखरूपी घोर अन्धेरे कैदखानेमें ला बन्द किया। परन्तु न मालूम उसमें कौनसा गुण था कि ऐसी दशामें भी राजपूत बारम्बार उससे चिमटते थे। इस गहरे रहस्यका पता लगाना सहज नहीं है। विशेष जांच करनेसे अकबरका अवश्य कोई खास गुण मालूम हो जायगा। वह गुण यह था कि उसमें मनुष्यके हृदयका हाल जान लेनेकी शक्ति थी। इस गुणसे वह सबके हृदयमें पैठ जाता था और आवश्यकता पड़ने पर चतुराइयोंसे सबको सन्तुष्ट कर देता था। इसी कारण हिन्दू उसे चाहते और मानते थे और इसी सबबसे उन्होंने (हिन्दुओंने) बड़े आनन्दके साथ उसे "जगद्गुरु" (Guardian of Mankind) की उपाधि दी थी। परन्तु यह बड़ी उपाधि पानेसे पहले वह बड़ा निठुर था। अपने हाथोंसे उसने कितने भारतवासियोंका खून बहाया; भगवान् एकलिङ्गकी मूर्त्ति तोड़कर उस मूर्त्तिसे मुसलमान धर्मप्रचारकोंके लिये नमाजगाह बनवाई। आरम्भमें हिन्दू-

विद्वेषी होनेमें वह निठुर अल्लाउद्दीन और अलाउद्दीनसे किसी तरह कम नहीं था; परन्तु पीछे अपने कौशलसे उसने हिन्दुओंका सन्तोष कर दिया, बल्कि इतनी प्रशंसा प्राप्त की जितनी उस वंशके किसीने आजतक नहीं पाई।

राजधर्म्महीन उदयसिंहके अधिकारमें मेवाड़राज्य आया। बप्पा, समरसिंह और हमीर जैसे सुशील, राजनीतिज्ञ और विद्वान् राजे जिस राज्यका शासन कर चुके थे, वह मूर्ख बेकाम और आलसी उदयसिंहको मिला। जिस राज्यका शासन करना बप्पा आदि कार्यकुशल और चतुर लोग अत्यन्त कठिन समझते थे उसे उदयसिंह ने बहुत सहज समझा; अतएव मेवाड़के लिये दुःखके दिन आये। सीसोदीय कुल की अधिष्ठात्री देवीने प्रतिज्ञा की थी कि बप्पारावलके वंशधर जबतक हमारी आज्ञामें रहेंगे तबतक हम चित्तौड़ छोड़कर बाहर नहीं जायँगी। बप्पाके वंशधर अबतक बराबर स्वदेशके लिये अपना खून बहाते आये थे, इसलिये महादेवीकी प्रतिज्ञा भी अटल थी। अपने देशकी स्वाधीनता बचानेके लिये गिह्लोट राजे जो जो काम कर चुके थे उनका स्मरण करके कौन ऐसा है जिसे विस्मय न होगा?—कौन राजपूत स्वाधीनता देवीके आगे अपने प्राण देनेको तैयार न हो जायगा? बीती हुई बातोंमेंसे पहला उदाहरण लीजिये;—अलाउद्दीनने जब महा उपद्रव मचाया था तब चित्तौड़के १२ राजकुमारोंने अपनेको समर्पण करके देवीकी प्यास बुझाई थी और वीरवर बप्पारावलके पवित्र झण्डेको शत्रुओंके ग्राससे बचाया था। वह दिन वीर राजपूतोंके लिये कैसा था। इसके बाद दूसरी बार जब मेवाड़के दक्षिणके पहाड़ोंको डाककर कठोरहृदय राजबहादुरने चित्तौड़पर चढ़ाई की, तब बप्पारावलके वीर वंशधर बाघजीने अपनेको उत्सर्ग कर भगवती चतुर्भुजाकी कठोर आज्ञाका पालन किया। परन्तु इस तीसरी बार—इस कठिन सङ्कटके समय—सीसोदीयकुलके इस घोर अधःपतनके समय—कौन आगे आकर देवीका सन्तोष करेगा? किस वीरके हृदयके रक्तसे तृप्त होकर भगवती चामुण्डा आज चित्तौड़की रक्षा करेंगी?—कोई नहीं आया; लड़ाईके मैदानमें कोई नहीं गया। तब क्या होगा? कुछ उपाय नहीं था! चित्तौड़की दुर्दशा हुई; वहांकी स्वाधीनताका सूर्य अस्त हो गया! जिन महादेवीने गहरी अन्धेरी रातमें निद्रित समरसिंहको सोनेसे जगाकर गम्भीर स्वरमें कहा था कि "हिन्दुओंका गौरव लुप्त हो

रहा है";— जिनने विस्मित लक्ष्मणसिंहके सामने आकर १२ राजकुमारोंकी बलि चाही थी; चित्तौड़की वही स्वाधीनता-लक्ष्मी—वही भगवती चतुर्भुजा—अभागे उदयसिंहका डरपोकपन देख देखकर एकदम चित्तौड़से चली गई ! उनके साथही राजपूतोंका एक बड़ा विश्वास भी चला गया । जिस विश्वासके कारण वे चित्तौड़को पवित्र सनातनधर्म्म और स्वाधीनताका दुर्जय स्थल समझते थे, आज उनका वह बड़ा विश्वास लुप्त हो गया !

इस पवित्र विश्वास और अपूर्व देवभक्तिसे ही राजपूतोंका जीवन था; यही देशरक्षाकी प्रबल शक्ति थी । संसारके इतिहासमें ऐसे अनेक दृष्टान्त मिलेंगे कि इसी दृढ़ विश्वास पर कितने देशोंके कितने राजाओंने प्रसन्नतापूर्वक स्वदेशरक्षाके लिये प्राण दे दिये । जातीयताका जो सुन्दर चित्र इतिहासमें देख पड़ता है उसका मूल कारण येही दो बातें हैं,—अर्थात् विश्वास और देवभक्ति । जबतक इस विश्वासका पर्दा पड़ा था तबतक सब कुछ था; इसके उठतेही सब बातें जाती रहीं ! इसी विश्वासके उठनेके कारण सदाका अजेय चित्तौड़ आज ऐसी दशामें हो गया कि उसकी रक्षा करना भी कठिन हो गया ! जो चित्तौड़ स्वाधीनता और राजगौरवका प्रधान स्थान था, सहस्रों वर्षसे जो भारतके दूसरे सब नगरोंसे बढ़ी चढ़ी अवस्थामें था, उसकी अवस्था ऐसी हो गई कि वह जंगली जन्तुओंके रहनेकी जगह बन गया; वहांके पवित्र मन्दिरों और वेदिकाओं पर आ आकर फाड़ खानेवाले जन्तु नाचने लगे !—और—जिस चित्तौड़के अन्दर प्रवेश करनेसे एक समय राजपूत अपनेको कृतार्थ मानते थे, दुर्भाग्यसे अब उसे अमङ्गलरूपी अन्धकारने घेर लिया और वह सीसोदीय नृपतियोंके रहने योग्य न रहा !

अकबरने दो बार चित्तौड़पर चढ़ाई की; पर फ़ारसी इतिहास 'फ़रिश्ता" में एकही आक्रमणका हाल मिलता है । जिस बार विजयी होकर उसने चित्तौड़का नाश किया था उसी बारकी चढ़ाईका वृत्तान्त "फरिश्ता" के लेखकने लिखा है; परन्तु जिस बार दलित और पराजित होकर लड़ाईके मैदानसे उसे पीठ दिखानी पड़ी थी उस बारकी बातें "फरिश्ता" में बिलकुल नहीं हैं । जान पड़ता है कि मुसलमान इतिहासकारने पराजयरूपी अपमानसे एक सजातीय बादशाहको बचानेके लियेही ऐसा किया । भट्टग्रन्थोंमें लिखा है कि वह अकबरका पहला आ-

अक्षम था। उदयसिंहकी उपपत्नी बड़ी वीरताके साथ उस अवसर पर लड़ी थी। टाड साहब उसका हाल यों लिखते हैं।—अकबरने बहुत बड़ी सेनाके साथ चित्तौड़ पर चढ़ाई की। कापुरुष राणाने पहले तो सामना ही करनेका साहस नहीं किया, परन्तु पीछे सरदारोंके कहने सुननेसे वे अकबरसे लड़नेके लिये बाहर निकले। जिसके हृदयमें साहस नहीं, प्रतिज्ञा नहीं, दृढ़ता नहीं, वह कभी किसी काममें सफल नहीं हो सकता। उदयसिंहके सैनिक बहुत देरतक अकबरके सिपाहियोंसे लड़ते रहे, पर जब स्वयं उनके राजा, उनके सरदारमें उत्साह नहीं था, तब उनका भी उत्साहहीन हो जाना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है। अतएव सिपाही भागे और उदयसिंहको अकबरने कैद कर लिया। मेवाड़का अधिपति मुसलमानोंके यहां कैद हुआ! वीरजननी मेवाड़भूमिके मुखपर कलङ्ककी कालिमा लगी! यह कम दुःखकी बात नहीं थी। उदयसिंहके कैद होतेही राजपरिवारमें बड़ी हलचल मच गई। कोई कुछ निश्चय न कर सका कि किस तरह उनका छुटकारा होगा। सरदारोंने उनको छुड़ानेके लिये कुछ भी चिन्ता नहीं की। अतएव चित्तौड़पुरी एकदम निस्तेज दशामें आ पड़ी। यह दशा देखकर उदयसिंहकी उपपत्नीको बड़ा क्रोध और क्षोभ हुआ। वह सोचने लगी—"क्या चित्तौड़में कोई वीर नहीं रहा? वीरोंकी जननी मेवाड़भूमिका क्या समस्त तेज मिट गया? अब भी जो इतने लोग चित्तौड़में वर्त्तमान हैं वे क्या निर्जीव हैं? क्या क्षत्रिय स्त्रियोंने निर्जीव सन्तानें पैदा की हैं? क्या क्षत्रियोंमें अब जरा भी साहस, वीरता तेज और आत्माभिमान नहीं है? यदि है तो वे क्यों चुपचाप बैठे देशकी यह दशा देख रहे हैं?"—ऐसी बातें विचारकर उस वीर रमणीने क्रोध और क्षोभके साथ अपने कोमल अङ्गों पर कठोर जिरहबख्तर पहनी और हाथोंमें तलवार तथा धनुष और तीर लिये। फिर वह घोड़े पर सवार होकर लड़ाईके मैदानमें गई। उसका जोश देखकर निर्जीव और निस्तेज लोगोंमें जोश और तेज आ गया;—राजपूत सैनिक नये उत्साहसे उसके साथ समरभूमिमें उतरे। अनगिनत शत्रु मारे काटे गये। कुछ देरकी लड़ाईके बाद मुसलमान पीछे हटने लगे। वह वीर राजपूतनी इधर उधरके सैनिकोंको हटाती हुई अकबरकी प्रधान फौजके पास पहुँची। उसकी अद्भुत वीरता देखकर अकबर स्तम्भित और विस्मित हुआ और मनमें कहे

धीरे धीरे पीछे हटकर मैदान छोड़कर चला जाना पड़ा। एक स्त्रीसे युद्धमें प्रसिद्ध मुगल बादशाह अकबरको पराजित होना पड़ा; मुगल सैनिकोंको खेत छोड़ भागना पड़ा। राजपूत रमणियोंकी वीरताका यह एक अच्छा दृष्टान्त है।

मुसलमानोंकी कैदसे उदयसिंहका छुटकारा हुआ। राज्यमें लौटकर वे अपनी प्रियतमा उपपत्नीकी बारम्बार प्रशंसा करने लगे और दरबारे आम करके सबके सामने हर्षपूर्वक उन्होंने कहा कि इसी वीरा उपपत्नीके कारण मेरा छुटकारा हुआ। राजाके मुखसे एक वेश्याकी इतनी प्रशंसा सुनकर चित्तौड़के सरदारोंका हृदय घृणा लज्जा और अभिमानसे भर गया और सिर झुकाये हुए वे दरबारसे उठकर उसी समय चले गये। इसके बाद उस वेश्याके वध करनेके उपाय करने लगे जिसने उनकी वीरतामें बट्टा लगाया था। भला अकेली स्त्री इतने सरदारोंसे कैसे बच सकती थी? वह शीघ्र उनके हाथोंमें पड़कर मारी गई।

अकबर पर विजय प्राप्त करके कहां तो सरदारों और सामन्तोंको उत्सव और हर्ष करना था, कहां दुर्भाग्यसे वे इस प्रकारके भीतरी झगड़ेमें फँसे। इस आपसके झगड़ेके कारण राज्यमें बड़ी गड़बड़ फैली। इधर यह सुनकर कि चित्तौड़में भीतरी गड़बड़ फैल रही है, अकबर अपने अपमानका बदला लेनेके लिये बहुत व्यस्त हुआ और एक बड़ी सेना लेकर उसने चित्तौड़ पर दूसरी बार चढ़ाई कर दी। उस समय उसकी उमर केवल २५ वर्षकी थी; शरीरमें खूब बल था; हृदयमें पूर्ण उत्साह था। उसका इतना प्रताप था कि सारा भारतवर्ष उससे दबता था; अनेक दुर्जय दुर्गोंको उसने अपने अधिकारमें कर लिया था; अनेक राजपूत राजे उसकी आज्ञा माननेके लिये सदा तैयार रहते थे। तब भला मेवाड़राज्य उससे कैसे रहता?—अकबरकी सेना बेरोकटोक मेवाड़में पहुंच गई। पण्डोली* ग्राम से बस्सी ग्राम, अर्थात् पांच कोसतक, उसके सैनिक पड़ाव डाले पड़े थे। इस अ-

* टाड साहबने लिखा है कि 'पण्डोली' नामके दो गांव हैं; उनमेंसे एक चित्तौड़के प्रसिद्ध मानसरोवरके किनारे है। इसी सरोवरके किनारेसे एक प्राचीन खण्डहरमें उनको एक शिलालेख मिला था। इसी लेखकी सहायतासे उन्होंने गिह्लोट कुलकी उत्पत्तिका ठीक समय निश्चित किया।

यह संगमरमरका एक स्तम्भ है; वह "अकबरका दीवा" † के नामसे प्रसिद्ध है। पथिक लोग अबतक उस दीपागार या मेवाड़के अध:पतनके स्मृतिस्तम्भको दूरसे देखते हैं और चित्तौड़की पूर्व दुरवस्थाका हत्तान्त स्मरण कर आंसू बहाते हुए चले जाते हैं।

भट्टग्रन्थोंमें लिखा है कि अकबरके चित्तौड़के निकट पहुँतेही डरपोक उदय-सिंह नगर छोड़कर भाग गया। पर चित्तौड़ एकदम रक्षकशून्य नहीं हो गया। यद्यपि वहांका छोटे जीका अधिकारी चला गया, पर चित्तौड़के पवित्र नाममें ऐसी मोहिनी माया है कि न मालूम कहां से असंख्य वीर निकल आये। जैसे किसी अदृश्य देवताने मृतसञ्जीवन मन्त्र फूंक दिया हो और चित्तौड़के पुराने वीरों की भस्मसे अनगिनत नये वीर पैदा हो गये हों। राजस्थानके भिन्न भिन्न राज्योंके सरदार और सामन्त अपनी सेनाएँ ले लेकर चित्तौड़के भिन्न भिन्न स्थानों की रक्षाके लिये तैयार हुए। वीर साहीदास चूंडावत वंशके अनेक तेजस्वी और साहसी सैनिकोंके साथ चित्तौड़के मुख्य फाटक "सूर्यद्वार" पर खड़ा हुआ। मा-देरियाका रावत दूदा सङ्गावतोंको ❋ लेकर लड़ाईमे गया। बेदला और कोटेरिया नामक दो राज्योंसे हिन्दूराजचक्रवर्ती महाराज पृथ्वीराजके वंशके दो वीर सामन्त राजे—और माद्रीका झाला अधिकारी—ये तीनों बड़े उत्साहसे समरभूमिमें अपनी सेनाओंके साथ गये। इनमेंसे बहुतेरे मेवाड़शासनके भीतर थे। इनके अतिरिक्त अनेक दूसरे राजपूत चित्तौड़के पक्षमें आये। उनमें देवलके अधिकारी बाघजी का वंशधर, झालावाड़का शनिगुरु राव, ईश्वरदास राठौड़, कर्मचन्द कुशावह, गवालियरका तुआर अधिकारी—आदि अधिक प्रसिद्ध है। इतिहास इनकी अपूर्व वीरताका प्रमाण है।

† कप्तान टाड लिखते हैं,—"यह दीपागार अभीतक ज्योंका त्यों विद्यमान है और सफेद चूनेवाले पत्थरका बना है। ऊँचाई इसकी ३० फीट है और चौड़ाई नीचे २० फीट और ऊपर ४ फीट। इसके ऊपर चढ़नेके लिये सीढ़ियां बनी हैं। एक बहुत बड़े बर्तनमें आग डालकर हर रात इसके ऊपरी भागपर रखी जाती थी। पथिक उसे दूरहीसे देख सकते थे।"

❋ ये सङ्गावत राणा सांगाके वंशके नहीं हैं। वीरवर चण्डके वंशमें सङ्ग नामक एक व्यक्ति हुआ था; ये लोग उसीकी सन्तान सन्तति हैं।

देखते देखते हिन्दू मुसलमानोंमें घोर लड़ाई आरम्भ हुई। मुसलमानी सेना लड़ाईके बाजे बजाती, धरती कँपाती, चिल्लाती हुङ्कारती चित्तौड़के सूर्यद्वारकी ओर बढ़ी। इधर वीर राजपूत सिंहोंकी तरह भयंकर तीर निकाले हुए खड़े हुए। चूंडावत वीर साहीदास शत्रुओं पर तीरोंकी लगातार वर्षा करने लगा। मुगल सेना इसी मार्गसे दुर्गके अन्दर पहुँचनेका प्रयत्न कर रही थी। मुसलमान सिपाही बन्दूकें दाग दागकर आगे बढ़ते थे। धीरे धीरे वे द्वारके सामने पहुंचे। वीर साहीदास एक पग भी नहीं हटा। उसके साथी सैनिक गोलियोंसे एक एक करके मारे जाने लगे, तौभी वह निरुत्साह नहीं हुआ। जबतक राजपूत सिपाहियोंके तनमें प्राण थे, शरीरमें रक्त था, तबतक वे शिथिल नहीं हुए—तबतक उन्होंने किसी प्रकार शत्रुओंको फाटकके अन्दर घुसने नहीं दिया।

चूंडावत वीर साहीदासने बड़ी वीरता दिखाई। परन्तु जिन दो महावीरोंने उस कठिन समयरूपी अन्धकारमें थोड़ी देरके लिये विकट प्रकाश फैला दिया था; जिनकी अद्भुत वीरता और रणकुशलताके वर्णनसे मेवाड़के इतिहासका अन्धकारमय अध्याय उज्ज्वल हो रहा है; स्वयं अकबर जिनकी प्रशंसा कर गया है; उनका नाम जयमल और पुत्तू है। जयमल बेदनोरका अधिकारी था। वह राठौर कुलमें उत्पन्न हुआ था और मेवाड़का सबसे साहसी सामन्त था। पुत्तू कैलवाका अधिकारी था। वह चूंडावत कुलमें उत्पन्न हुआ था। इन दोनों महावीरोंके पवित्र नाम अबभी राजपूतों और भाट चारणोंमें आदरके साथ लिये जाते हैं; अब भी प्रातःकाल सोतेसे उठकर दूसरे प्रातःस्मरणीय महापुरुषोंके नाम स्मरण करते समय राजस्थानवाले इन दोनों वीरोंके नाम लेते हैं; अब भी राजपूत स्त्रियां सन्ध्याका दीपक बालनेके समय इन दोनोंके नाम याद करके अपने बालबच्चोंकी मङ्गलकामना करतीं और गृहस्थकुमारियां आटा पीसते पीसते भट्टकवियोंके बनाये उनके वीरत्वके गीत एकसाथ बड़े मधुर स्वरमें गाती हैं। जबतक संसारमें वीरत्वका आदर रहेगा, जबतक राजपूतोंके हृदयमें उनकी प्राचीन वीरताका थोड़ासा अंश भी वर्त्तमान रहेगा, पुरानी घटनाओंके चित्रकी एक रेखा भी जबतक उनके स्मृतिपट पर अङ्कित रहेगी, तबतक जयमल और पुत्तूके नाम संसारसे लोप न होंगे; कोई उनको लुप्त नहीं कर सकेगा। जयमल और पुत्तू किसीके उत्साह दिलानेसे उत्सा-

चित नहीं हुए थे, उनका उत्साह खरीदा हुआ उत्साह नहीं था; वे सच्चे हृदयसे स्वजाति और स्वदेशप्रेमसे—अपने हार्दिक उत्तेजनसे—इस कठोर काममें लगे थे। यश या स्वार्थसाधनके लिये या किसी नीच प्रवृत्तिसे उन्होंने ऐसा नहीं किया। इस भयानक अवसर पर केवल पुरुषही नहीं लड़े; बल्कि महलके अन्दर पर्देमें रहनेवाली राजपूत वीरनारियां भी कोमल अङ्गोंको कठोर जिरहबख्तरोंसे ढँके और हाथोंमें तलवार लिये चित्तौड़रक्षाके लिये बाहर निकलीं।

जब सालुम्ब्राका चूंडावत वीर साईदास "सूर्यद्वार" पर लड़कर वीरगतिको गया, तब बचे हुए चूंडावत वीरोंकी सरदारीका पद कैलवाके पुत्तूको सौंपा गया। उस समय उसकी उमर केवल १६ वर्षकी थी। उसका पिता पिछली लड़ाईमें मारा जा चुका था। पिताके मरनेके समय वह बहुत छोटा था; उसकी माता जीवित थी; उसका लालन पालन करनेके लियेही वह पतिके साथ सती नहीं हुई। पुत्तू उसका एकमात्र पुत्र था; कैलवाके अधिकारीका एकमात्र वंशधर था; उसके न रहनेसे चूंडावत वंशके जगवत गोत्रका भागी भ्रष्ट होता था; ऐसी अवस्थामें उसका जीवन कितना मूल्यवान् था सो आपसे आप अनुमान किया जा सकता है। पर उसकी माता वीर रमणी थी; पुत्रके जीवनकी अपेक्षा चित्तौड़के गौरवकी रक्षा करना अधिक आवश्यक समझती थी। उसने उसे पीले कपड़े पिन्हाये और चित्तौड़-रक्षाके लिये प्राणतक देनेको कहा। वह वीरकी पत्नी थी, वीर जननी थी और स्वयं वीरा थी। यह सोचकर वह तनिक भी व्याकुल नहीं हुई कि यदि लड़ाईमें पुत्र मारा जायगा तो जगवत कुल सदाके लिये लुप्त हो जायगा। केवल इस विचारसे उस वीरमाताको सन्तोष और धैर्य्य था कि मातृभूमिके लिये उसका पुत्र जीवन देगा; एक पवित्र व्रतके पालनमें प्राण देना अनुचित नहीं है। इसी बातके सन्तोषसे उसने उत्साहपूर्वक प्यारे पुत्रको समरभूमिमें जानेकी आज्ञा दी;—साथही साथ वह आप भी जानेको तैयार हुई। उस समय उसे एक बातकी चिन्ता हुई। उसकी पुत्रवधू सुकुमारी बालिका थी; उसे घरमें छोड़ देनेसे सम्भव था कि पीछे कुलकी कुछ बदनामी होती; अतएव अपने हाथोंसे उसने उसे लड़ाईके सामानसे सजाया। एक एक करके उसके सब गहने उतारे गये और जिरहबख्तर पिन्हाकर हाथमें एक बर्छा दिया गया। इसके बाद

सब वीरभावसे पर्वतके नीचे उतरे । उस वीर रमणीके वीर उदाहरणसे अनेक क्षत्राणियोंने उत्साहित होकर उसका साथ दिया । सब स्त्रियां युद्धगीत गाती हुई लड़ाईके लिये चलीं । चित्तौड़के वीरोंने चुपचाप आश्चर्यसे उन वीरनारियों-का अद्भुत वीरत्व देखा । जिन्होंने कभी अन्तःपुरकी छाया भी नहीं छोड़ी थी; जो सदा कोमलताके साथ काम करती थीं; उनको सब स्नेह माया सब सुकुमा-रपन त्यागकर स्वदेशके लिये युद्ध करनेको जाते आज राजपूत वीरोंने अपनी आंखोंसे देखा ! उन्होंने और भी देखा कि पुत्तूकी वीरमाताने अनेक वीर रम-णियोंके साथ आकर बहुतसे शत्रुओंको यमपुर भेज दिया और अन्तमें बचाव होते न देखकर उन सभोंने अपनेही हाथोंसे अपनी छातियोंमें बर्छे घुसेड़ कर प्राण दे दिये !

अपनी कन्याओं, बहिनों और पत्नियोंको ऐसी वीरतासे जीवन देते देखकर चित्तौड़के वीर लोग सब सांसारिक बन्धन, सब माया ममता छोड़कर एकदम जोशमें भर गये । गर्जकर वे शत्रुसेनाके पास पहुँचे । मुगलसेनाएँ बराबर दुर्गकी ओर बढ़ी आती थीं । उनकी तोपोंसे लगातार गोले बरस रहे थे । उन गोलोंने न मालूम कितने क्षत्रिय वीरोंका नाश किया । राजपूती सेना धीरे धीरे कम होने लगी; पर वीर राजपूत किसी तरह निरुत्साह नहीं हुए,—किसी प्रकार वे शत्रु-ओंसे नहीं दबे,—किसी तरह मुसलमानोंके वशमें नहीं हुए । क्या क्षत्रियकुलमें जन्म लेकर दूसरोंके दास होते—देशवैरियोंके अधीन होना पसन्द करते ? नहीं, कभी नहीं, ऐसा नीच उपाय करके प्राण रखना व्यर्थ था । ऐसा करना तो दूर रहे, वीरहृदय राजपूतोंने यह तुच्छ विचार भी कभी नहीं किया । वे बड़े जोशसे तीर मारते हुए आगे बढ़े । पर सब उद्योग व्यर्थ हुआ ! भला छोड़ेके अस्त्रोंकी सहायतासे दूरकी तोपोंकी मार कैसे रुक सकती थी ? आखिर एक गोली आकर प्रधान सेनापति जयमलके हृदयमें लगी । उस गोलीकी चोट खाकर वह वीरपुरुष घोड़ेसे नीचे गिर पड़ा । मारे क्रोधके उसके हृदयमें आगसी लग गई । डरपोक शत्रुओंने धर्मविरुद्ध काम किया; अर्थात् सम्मुख आ और तलवारसे न लड़कर दूरसे गोली चलाई; इससे जयमलको जो दुःख हुआ उसका अन्दाजा करना कठिन है ।

वीर जयमल अत्यन्त दुःखित होकर चित्तौड़की भविष्य दशाकी बातें सोचने

लगा । उसने देखा कि अब चित्तौड़की रक्षा नहीं की जा सकती;—रक्षाका कोई उपाय नहीं है । मानसिक दुःखके कारण उसका हृदय फटने लगा; आंखोंसे आंसू निकल पड़े । धीरे धीरे महा विकट समय आया । तब जयमलने चित्तौड़के लिये वीरतापूर्वक अपना जीवन समर्पण कर देनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा की । जुहारका प्रबन्ध होने लगा । पीले वस्त्र पहने हुए आठ सहस्र राजपूतोंने 'बीड़े' * लिये और एक दूसरेसे विदा होकर वे शत्रुओंसे लड़ने चले । दुर्गके सब द्वार खोल दिये गये; जिस तरह पर्वतसे नदियां बहती हैं उसी तरह उन खुले हुए द्वारोंसे वे बाहर निकले । दोनों ओरके असंख्य सैनिक मारे गये, पर इससे मुगल सैन्यमें कुछ कमी नहीं हुई । उनकी संख्या राजपूतोंसे कहीं अधिक थी । मानों एक मरता था तो सैकड़ों पैदा होते थे । आखिर चित्तौड़का अधःपतन हुआ—शोचनीय अधःपतन हुआ । उस पतनसे फिर चित्तौड़ उठ नहीं सका;—उठ सकता है कि नहीं यह भी कहा नहीं जा सकता ।

वीर राजपूतोंने बचावके लिये अपनेको शत्रुओंके हाथोंमें नहीं सौंपा; किसीने ऐसा करके अपने पीले वस्त्रको कलङ्कित नहीं किया; किसीने 'राजपूत' नामकी महिमा नहीं मिटाई । वीरभूमि चित्तौड़ नगरी वीरशून्य हो गई; जिस तरह दीपक पर पतङ्ग न्योछावर हो जाते हैं उसी तरह तीस सहस्र राजपूतवीर मातृभूमिके लिये लड़ मरे । असंख्य स्त्री पुरुषोंके रक्तसे चित्तौड़के सब स्थान कीचड़की भांति हो गये और असंख्य छिन्न भिन्न लाशें पड़ी दिखाई देने लगीं । उन सबको रौंदता और कुचलता हुआ निठुर अकबर दुर्दशाग्रस्त चित्तौड़पुरीके अन्दर पहुँचा । उस दिन मेवाड़ और उसके बाहरके सब राजपूत सरदार और सामन्त तथा राणाके कुटुम्बके १७०० लोग काम आये । केवल गवालियरका तुआर राजा एक और कठोर काममें पड़नेके लिये उस कालयुद्धसे जीवित बच गया । ९ रानियों, ५ राजकुमारियों, २ बालकों और सरदारोंकी सब पत्नियों बहिनों तथा पुत्रियोंने उस दिन आगमें भस्म होकर अपनी प्रतिष्ठा बचाई । उस दिन चित्तौड़की जो दुर्दशा हुई उसे कभी कोई भूल नहीं सकता और जबतक संसारमें "हिन्दू" नाम रहेगा तबतक कोई भूल नहीं सकेगा । उसी दिन राजपूतोंकी स्वाधीनताकी देवी

* विदा होनेके समय राजपूत लोग बीड़े लेते थे ।

चित्तौड़से चली गई। यह घटना आदित्यवारको हुई; जो उस आदित्यवारको † गिह्लोट कुलके परमपूज्य आदित्य भगवान् एकबार चित्तौड़ पर गौरवरूपी इतना प्रबल प्रकाश फैलाकर कि जितना फिर कभी नहीं फैला, अस्त हुए। उस दिनके बाद वैसा गौरव फिर कभी दिखाई नहीं दिया।

जो चित्तौड़ अबतक स्वाधीनता और सनातनधर्मके दुर्भेद्य अजेय दुर्गके समान था आज उसका ऐसा अधःपतन हुआ! शोभा और सुन्दरतामें एक समय जो देवताओंकी नगरी अमरावतीके तुल्य था, आज निठुर अकबरने उसका सौन्दर्य नष्ट कर डाला! सुन्दर महलों और दर्शनीय मन्दिरोंको गिरवाकर जमीनके बराबर कर दिया! जिन नगाड़ोंकी ध्वनि कोसोंतक पहुंचकर गिह्लोट नृपतियोंकी महिमा प्रकट किया करती थी, जो बहुमूल्य दीपस्तम्भ जगन्माता भगवती चतुर्भुजा के मन्दिरमें विमल प्रकाश फैलाता था और जिन सुन्दर किवाड़ोंसे चित्तौड़के बड़े बड़े द्वार शोभित थे, उन सबको निर्दय अकबर अपने नवीन नगर अकबराबादको सजानेके लिये (जो कि बसाया जानेको था) अपने साथ ले गया ‡।

† रविवार, चैत्र सुदि ११, संवत् १६२४ (मई सन् १५६७ ई०) को यह घटना हुई।

‡ "तीजो शाक चितोड़ रो" अर्थात् चित्तौड़के इस तीसरी बार दुर्दशाग्रस्त होनेकी घटनासे अकबरके कठोर हिन्दूद्वेष और अनुचित अत्याचारोंका स्पष्ट परिचय मिलता है। क्योंकि अलाउद्दीन या बहादुरशाह राजबहादुरके कठोर हाथोंसे जो भवन, मन्दिर इत्यादि बच गये थे, उन सबका इसने नाश कर डाला। कहा जाता है कि अकबर बड़ा शिल्पप्रेमी और सबका हितैषी था; पर इन बातोंसे उसके "जगद्गुरु" आदि उपनामोंको कलङ्क लगता है। अलाउद्दीनके आक्रमणसे कम हानि हुई; क्योंकि दुर्गकी रक्षाका भार एक हिन्दू राजाके ऊपर था;—और राजबहादुर अपना मतलब निकालनेके लिये बहुत थोड़ा समय पा सका था। इन दोनोंके समय विशेषता यह थी कि राजपूत अपने मन्दिरों और भवनोंको फिरसे बनवा या सुधार सके थे; पर अकबरके आक्रमणके बाद ऐसा नहीं हो सका। अकबरके बाद राजपूतोंको अपने बचावकी चिन्ता अधिक थी; जीर्ण स्थानों के पुनः बनवाने या उनकी मरम्मत करानेका अवसर उनको नहीं था; इसलिये

अकबरने अपने हाथोंसे अनुचित रीतिसे वीरवर जयमलके प्राण लिये। जिस बन्दूकसे उसने ऐसा किया, उसका नाम "संग्राम" § रखा। इस बातको बखाता अबुलफज़ल और जहांगीरकी लिखावटसे प्रमाणित होती है। जयमलको उसने धोखेसे मारा; पर उसके गुणोंको वह नहीं भूला। उसके मारनेमें उसने अपना सम्मान समझा। जयमल और वीर बालक पुत्तूकी अपूर्व वीरताके आदर की रीतिपर देहलीमें अपने महलके फाटक पर एक अच्छी जगह उसने इन दोनोंकी मूर्तियाँ बनवाकर रखीं *।

अकबरके द्वारा जो मन्दिर और महल नष्ट भ्रष्ट हुए वे फिर अपनी पूर्व दशाको पहुंचाये नहीं जा सके। देशकी दीनदशाके समय कभी शिल्प या कारीगरोंकी उन्नति नहीं होती; – चाहे कारीगर और शिल्पी हों भी पर जबतक उपाय और मौका नहीं मिलता तबतक काममें सफलता मिलना असम्भव है। अकबरके कठोर अत्याचारोंसे चित्तौड़ पतित हुआ; फिर नहीं उठ सका और इसलिये उसकी वह पूर्व शोभा भी न आ सकी।

§ "जहांगीरनामे"में लिखा है कि इस बन्दूकसे अकबरने तीन चार सहस्र पक्षी मारे थे। इसका नाम 'संग्राम' था और इसीसे उसने जयमलको मारा।

* २५० वर्ष पूर्व प्रसिद्ध फरांसीसी डाक्टर बर्नियर भारतवर्षमें आया था; उसने इन दोनों प्रतिमूर्त्तियोंको देखा था। भारतवर्षसे उसने अपने देशमें मित्रोंके नाम जो पत्र भेजे थे उनमेंसे अधिकांश सन् १६८४ ई० में लन्दन नगरमें पुस्तकाकार छपे। जिस पत्रमें जयमल और पुत्तूका हाल है वह १ ली जुलाई १६६३को लिखा गया था। उसमें बर्नियर लिखता है –"मुख्य फाटकके रास्तेसे अन्दर जाने के समय द्वारके दोनों ओर दो बड़े बड़े हाथियोंके सिवा वर्णनके योग्य कोई दूसरी चीज नहीं देखी। उनमेंसे एक पर चित्तौड़के अधिपति (!) जयमलकी मूर्त्ति सवार थी और दूसरे पर उसके भतीजे फत्ते (पुत्तू) की। इन दोनों अति साहसी वीरोंने अपनी वीर माताओंके साथ समरभूमिमें बड़ी वीरता दिखाई थी। वे इतने बहादुर और साहसी थे कि प्राण रहते तक उन्होंने शत्रुओंके आगे सिर नहीं झुकाया; उनके इसी गुणसे शत्रुको भी उनकी प्रतिमूर्त्तियां बनवानी पड़ीं।

प्रसिद्ध कार्थेज नगरके नामी वीर हानिबेलकी लड़ाईमें "कना" नामक मैदानमें रूमके समस्त वीर मारे गये थे; उस समय विजयी हानिबेलने अपनी जीतका अन्दाजा मारे जानेवाले शत्रुओंकी अंगूठियोंको तौलके किया था। इसी प्रकार अकबरने कटे हुए राजपूतोंके यज्ञोपवीत तौलकर अपने विजयका परिमाण जाना। तौलने पर राजपूतोंके यज्ञोपवीतोंका वजन ७४॥ मन हुआ ! तबसे '७४॥' का यह तिलाक समझा जाने लगा। जिस पत्र या चिट्ठी पर '७४॥' लिखा रहे वह मुहरबन्द चिट्ठीसे बढ़कर सुरक्षित समझी जाने लगी। जिसके नाम चिट्ठी हो उसके सिवा दूसरा कोई यदि उसे खोले तो उसको चित्तौड़के इतने वीरोंके (जिनके यज्ञोपवीतोंका वजन '७४॥' * मन था) मारनेका पाप लगे †। ऐसे वृत्तान्तका इतिहासमें कम प्रयोजन होता है, पर इसका भीतरी तत्त्व विचारकर इसे इतिहासमें स्थान देना आवश्यक हुआ। यह तत्त्व मामूली नहीं है। इससे हृदय उत्तेजित होता है और वर्त्तमान बातें भूलकर बीती हुई घटनाओंका चित्र आंखोंके आगे खिंचने लगता है।

राजभवनमें प्रवेश करतेही हाथियोंपर सवार इन दोनों वीरमूर्त्तियोंको देखकर मुझे जो अद्भुत भक्ति, भय और आनन्द हुआ वह स्वयं मैं नहीं समझ सकता।"

डाक्टर बर्नियर राजपूतानेके इतिहाससे भली भांति परिचित नहीं थे कदाचित् इसीसे उन्होंने जयमलको चित्तौड़का राजा और पुत्‌को उसका भतीजा लिखा। परन्तु जब इन दोनोंकी केवल पत्थरकी बनी प्रतिमूर्त्तियां देखकर उनके हृदयमें ऐसा गम्भीर भाव उदित हुआ, तब अनेक कष्ट सहकर राजपूतानेके इतिहासका पता लगानेवाले—इनके दोनोंकी निवासभूमि खूब अच्छी तरह जी भरके देखनेवाले—मानो राजपूतोंके लियेही संसारमें जन्म धारण करनेवाले टाड साहबने इनके विषयमें जो उच्च भाव प्रकट किया वह इस इतिहासके पढ़नेवाले स्वयं समझ सकते हैं।—बर्नियरकी भारतयात्राका हाल हमने अंगरेजीसे हिन्दीमें लिखा है। वह चार भागोंमें समाप्त होगा। दो भाग छप चुके हैं। प्रत्येक भागका मूल्य आठ आने।

* इस मनको ४० सेरका नहीं किन्तु पक्के चार सेरका समझना चाहिये।

† 'चीतौड़ मारनेका पाप'—'The sin of the slaughter of Cheetore.'

चित्तौड़ छोड़नेके बाद उदयसिंह राजपिपली नामक घने वनमें गोहिलोंके पास पहुँचे। वहां कुछ दिन रहकर अरावलीके अन्तर्गत गिरवा नामक स्थानमें गये। चित्तौड़ जीतनेसे पहले वीरवर बप्पारावल भी इस स्थानके पासही रहा करता था। चित्तौड़की इस दुर्दशासे कई वर्ष पहले घाटीके आगे उदयसिंहने एक झील बनवाई थी और अपने नामके अनुसार उसका नाम 'उदयसागर' रखा था और पहाड़ोंके बीचमें एक बांध बँधवाया था। इसके पासही पहाड़ियों पर उन्होंने 'नवचौकी' नामकी छोटी गढ़ी बनवाई थी। थोड़ेही दिनोंमें इस गढ़ीके चारों ओर बड़ी बड़ी इमारतें बन गईं; धीरे धीरे वहां एक नगर बस गया जो बढ़ते बढ़ते बहुत बड़ा हो गया। उदयसिंहने उसका नाम अपने नामके अनुसार रखा। इस प्रकार तभीसे उदयपुर मेवाड़की राजधानी हो गया।

चित्तौड़ ध्वंसके चार वर्ष बाद ४२ वर्षकी उमरमें गोगुण्डा नामक स्थानमें उदयसिंहका परलोकवास हुआ। उनकी मृत्युके बाद उनके २५ पुत्र जीवित थे। इनके वंशधर अनेक शाखा प्रशाखाओंमें फैले और 'रणोत' कहलाये। रणोत, पुरोत और कणोत इन्हींके वंशके हैं। अन्त समयमें उदयसिंह राज्यके विषयमें अपने पुत्रोंमें झगड़ा लगा गये। सदाकी उत्तराधिकारविधि टालकर वे अपने सबसे प्यारे छोटे पुत्र जगमलको उत्तराधिकारी नियत कर गये। इसीसे झगड़ा बढ़ा। जगमलने मेवाड़की गद्दी पाई। मेवाड़में एक राजाके मरनेके थोड़ेही दिन बाद दूसरेको गद्दी हो जाती है। परिवारके लोग कुलपुरोहितोंके यहां आकर शोक मनाते हैं; इधर नये राजाका अभिषेक होता है और नगरके लोग तथा मन्त्रिवर्ग मकानों तथा इमारतोंको खूब सजाते हैं। फाल्गुन महीनेमें वासन्ती पूर्णिमाके दिन उधर तो जगमलके भाई पिताकी अन्त्येष्टि क्रिया करने श्मशानको गये, इधर जगमल गद्दीपर बैठा। पर उसके भाग्यमें राज्यभोग लिखा नहीं था। क्योंकि जिस समय यहां भाट और चारण स्तुति कर रहे थे उस समय श्मशानमें उसके पिताके मृतशरीरके चारों ओर सरदार लोग कुछ औरही विचार कर रहे थे। उनके इस विचारका फल शीघ्र सबको मालूम हो गया। पाठकोंको अवश्य याद होगा कि उदयसिंहने शनिगुरु सरदारकी कन्याके साथ विवाह किया था। उस शनिगुरु राजकुमारीके गर्भसे उदयसिंहके एक पुत्र हुआ था। यही बालक "वीरवर प्रताप·

सिंह" के नामसे विख्यात हुआ। प्रतापका मामा झालावाड़ी 'राव' इनको राज-सिंहासन पर बिठानेके लिये बहुत व्यग्र हुआ और मेवाड़के प्रधान सामन्त चूंडावतशिरोमणि कृष्णसे उसने पूछा—"प्रताप सच्चा उत्तराधिकारी होनेपर भी राज-सिंहासन न पा सका; आपके रहते यह अविचार कैसे हुआ?" कृष्णने नम्रताके साथ उत्तर दिया—"यदि रोगी अन्तिम समयमें थोड़ासा दूध मांगे तो देनेमें क्या हर्ज है?—राव साहब, आपके भाञ्जेको ही मैंने पसन्द किया है; मैं प्रतापके ही पास खड़ा होऊँगा।"

जगमल भोजनागारमें पहुंचकर राणाजीकी ऊँची गद्दीपर बैठा था; इधर प्रतापसिंह मेवाड़से चले जानेके लिये घोड़े पर सवार हो रहे थे। इतनेमें गवालियरके पदच्युत राजाके साथ रावत कृष्ण भोजनागारमें पहुंचा। वहां पहुंचतेही दोनोंने जगमलकी एक एक बांह पकड़कर उसे गद्दीके सामने एक नीचे आसन पर बिठा दिया और कहा—"महाराज, आपने धोखा खाया। इस आसन पर बैठनेका अधिकार केवल प्रतापसिंहको है।" इसके उपरान्त सालुम्बा अधिकारीने प्रतापसिंहको राजसी वस्त्र आभूषण पहनाये और देवीका खड्ग देकर राजासन पर बिठाया। यह हो जानेके बाद उसने तीन बार जमीनतक झुककर प्रणाम किया जैसा कि मेवाड़के अधिपतिके प्रति करना उचित है। और सरदारोंने भी ऐसाही किया। यह शुभ कार्य समाप्त होनेपर नवीन अधिकारी प्रतापसिंहने सबको अपने पास बुलाके कहा—"आहेरियाका उत्सव आ गया, इसलिये चलिये सब कोग घोड़ों पर सवार होकर शिकार खेलने चलें और भगवती गौरीके सम्मुख वराह-बलि देकर आगामि वर्षका फल देखें।" आनन्दमें भरे हुए सब शिकार खेलने चले। असंख्य वराह मारे गये। उस दिनके शिकारमें कृतकार्य होकर सरदारोंने समझ लिया कि मेवाड़के भाग्यमें भविष्यके लिये अच्छीही बातें लिखी हैं।

दसवां अध्याय।

प्रतापका सिंहासनारोहण;—अकबरसे राजपूत राजाओंका सम्मिलन;—प्रतापकी हीनावस्था;—युद्धके लिये उद्योग;—मालदेवका अकबरके वशमें होना;—प्रतापका राजपूत राजाओंसे सम्बन्ध तोड़ देना;—आमेरके राजा मानसिंह;—शाहजादः सलीमका मेवाड़ पर आक्रमण करना;—हल्दीघाटकी लड़ाई;—प्रताप और सलीमका घोर युद्ध;—प्रतापसिंहका घायल होना और झाला सरदारका उनकी रक्षा करना;—अपने भाई शक्तसिंहसे प्रतापको सहायता मिलना;—अकबरका कमलमीर पर अधिकार करना;—मुगल सेनाका उदयपुर पर अधिकार;—मुगल सेनापति फरीद और उसके सैनिकोंका प्रतापके द्वारा मारा जाना;—भीलोंका प्रतापके परिवारका जीवन बचाना,—खानखानां;—प्रताप पर अधिक सङ्कट;—अकबरसे सन्धिकी सूचना;—बीकानेरके राजकुमार पृथ्वीसिंह;—'खुशरोज' का वर्णन;—मेवाड़ छोड़कर प्रतापका सिन्धुनदकी ओर जाना;—उनके मन्त्रीकी स्वामिहितैषिता;—प्रतापसिंहका लौटना;—मुगलोंपर आक्रमण करना;—कमलमीर और उदयपुर पर पुनः अधिकार,—विजयगौरव;—पीड़ा और मृत्यु।

प्रतापसिंहको मेवाड़के राणाकी पदवी मिली। पर उनके पास राजधानी, सहायता, उपाय, अवलम्ब, कुछ नहीं था। लगातार विपत्तियां सहते सहते उनके साथी सुस्त पड़ गये थे; पर वीर प्रताप एक क्षणके लिये भी निरुत्साह नहीं हुए। इनके कानोंमें इनके पूर्वजोंका वीरमन्त्र फुंका हुआ था; उनके तेज और साहसकी कहानियां सुन सुनकर इनमें भी वे गुण आ गये थे। सब राजसी बातें इनमें वर्तमान थीं। किस तरह चित्तौड़ अपने पूर्व गौरवको पहुंचेगा, किस तरह पूर्वजोंका बल पुनः एकत्र होगा और शत्रु नीचा देखेंगे, यही चिन्ता रात दिन प्रतापको लगी रहती। यह चिन्ता ज्यों ज्यों बढ़ती गई त्यों त्यों उनका साहस और उत्साह भी दृढ़ होता गया; अपने वीरव्रतका पालन करनेके लिये वे और भी उत्तेजित होते गये। वे जानते थे कि इस व्रतका पालन करनेमें अनेक विघ्न पड़ेंगे; यह भी उनको ज्ञात था कि वे निस्सहाय हैं और अकबर बड़ा शक्तिमान् है; पर इतना जानकर उनके हृदयका उत्साह और भी बढ़ रहा था।

स्वदेशी भाट चारणोंके काव्यग्रन्थोंमें अपने पूर्वजोंकी अद्भुत वीरता और मा-हात्म्यका हाल पढ़कर प्रतापने जाना था कि गिह्लोट राजाओंने कभी शत्रुओंके आगे सिर नहीं झुकाया; कठोरसे कठोर आपदा पड़नेपर भी देशवैरियोंकी अधीनता स्वीकार नहीं की। यद्यपि अलाउद्दीन आदि निष्ठुर आक्रमणकारियोंने कई बार चित्तौड़की दुर्दशा की, तथापि कोई उस नगरीको कभी अपने हाथोंमें नहीं कर सका। हाथोंमें करना तो दूर था, बहुतसे मुसलमान आक्रमणकारी हथ कड़ियों बेड़ियोंसे जकड़े जाकर चित्तौड़के कैदखानेकी भी हवा खा गये थे। तो क्या फिर उसी चित्तौड़पुरीका शत्रुओंके हाथोंसे उद्धार होना असम्भव था? क्या अकबरका अभिमान कभी न टूटता?—प्रतापको विश्वास था कि आज अपने देशपर शत्रुओंका अधिकार है, आज अकबरका सितारा चमका है; पर हो सकता है कि कलही वह ऊंचे आसनसे गिरकर एकदम निचाईमें चला जाय या देहली का राज्यही उससे छीन लिया जा सके। वीरवर प्रतापके इस विचारको स्वाभ-विरुद्ध या कमजोर नहीं कहा जा सकता; पर वे नहीं जानते थे कि धीरे धीरे उनके आगे बढ़नेके रास्तेमें अनेक रुकावटें खड़ी की जा रही हैं;—चतुर अकबर चुपचाप बैठा हुआ उनके सब उद्योग व्यर्थ कर देनेके लिये चक्र चला रहा है! जिस समय प्रतापके मनमें ऊपर लिखे विचार उत्पन्न हो रहे थे उस समय अक-बर दूसरे राजपूत राजाओं और उनके परिवारवालोंको लालच दे देकर अपने वश में कर रहा था और उनको प्रतापके विरुद्ध उभारता था। मारवाड़, आमेर और बीकानेर यहांतक कि चित्तौड़के बड़े मित्र बूंदीनरेशने भी अकबरका पक्ष लिया। विशेष दुःखकी बात तो यह है कि प्रतापके भाई सागरजीने * भी और राजाओंका अनुकरण किया और अपने भाईसे इस प्रकार द्रोह करनेके बदलेमें अपने पूर्वजोंकी प्राचीन राजधानी और राणाकी उपाधि पाई।

* 'कन्धार' नामका दुर्ग सागरजीके अधिकारमें था। उसके वंशके लोग 'साग-रौत' कहलाये। ये लोग आमेरके प्रसिद्ध नरपति सवाई जयसिंहके समय तक कन्धारके मालिक थे। उस समय आमेरके कछवाहे राजपूतोंके साथ विवाहसम्बन्ध करना उन्होंने स्वीकार नहीं किया, इसलिये महाराज सवाई जयसिंहने कन्धारका किला उनसे ले लिया। मध्यभारतमें सागरौतोंने अनेक छोटे छोटे राज्य बसाये थे जिनमें उमरी, भदौरा, गणेशगञ्ज, दिगरौली आदिकी अधिक प्रसिद्धि हुई।

जब ये सब बातें प्रतापको मालूम हुईं, जब उन्होंने सुना कि उनके देश और जातिके राजे बल्कि उनके भाईबन्धु मुसलमानोंका पक्ष लेकर उनके विरुद्ध लड़ने को तैयार हैं, तो उनको बहुतही दुःख हुआ। पर तौभी वे अपनी प्रतिज्ञा और महामन्त्र नहीं भूले; उनके हृदयका उत्साह और साहस जरा भी कम नहीं हुआ। ज्यों ज्यों विपत्तियां बढ़ती गईं त्यों त्यों उनका साहस और उत्साह भी दृढ़ होता गया—त्योंही त्यों शत्रुओंका अहङ्कार तोड़नेके लिये वे अधिकतर अधीर होते गये। प्रतापने प्रतिज्ञा की थी कि "माताके पवित्र दूधपर कभी बदनामीकी आंच न आने दूंगा;"—इस प्रतिज्ञाका पालन उन्होंने पूरी तरह किया। इसी प्रतिज्ञाके बलसे अकेले लगातार २५ वर्षों तक वे पराक्रमी मुगल बादशाहकी बहुत बड़ी सेना और इकट्ठे बलको रोक सके। बड़े बड़े कष्ट उनको उठाने पड़े। अनेक अवसरों पर बिना खाये बिना सोये रह जाना पड़ा; अनेक बार बहुत दूर पैदल चलना पड़ा। इस २५ वर्षोंके समयमें कभी तो उन्होंने बस्तियोंपर टूट पड़कर उनको लूट लिया है और उनकी बुरी दशा कर डाली है, कभी पर्वत पर्वत जङ्गल जङ्गल उनको भटकना पड़ा है, और कभी मौका पाकर शत्रुओंकी सेनाओंको उन्होंने बेतरह नीचा दिखाया है और फिर घने बनमें जा छिपे हैं। इस कठिन समयमें उनके परिवारके लोगों और बालक पुत्र अमरसिंहको खूबही दुःख झेलने पड़े। राजसी ठाटबाट और सुखसामग्री उनसे छूट गई और फटे पुराने कपड़ों जंगली फूल फल तथा पहाड़ी झरनोंके जलपर उनको सन्तोष करना पड़ा। जो कभी घरके बाहर नहीं निकले थे, उनको प्राण बचानेके लिये भयानक जन्तुओंसे भरे काँटीले जङ्गलोंमें पैदल चलना पड़ा। इससे बढ़कर और कौनसा कष्ट हो सकता है? ऐसी कठोरता और ऐसा कष्ट सहना क्या सहज है? कौन ऐसा मनुष्य है जो देशोद्धारके लिये लगातार २५ वर्षों तक अनेक प्रकारकी असह्य आपत्तियां झेलता फिरे? प्रताप देवता थे; मनुष्यकुलमें उत्पन्न होकर भी देवता थे; इस पुण्य-भूमि भारतवर्षका शत्रुओंके हाथोंसे उद्धार करनेके लिये ही इस जगत्में उनका जन्म हुआ था। यद्यपि उनका यह पवित्र उद्देश्य सफल नहीं हुआ, यद्यपि देशके दुर्भाग्यसे वे अपनी मातृभूमिके सब दुःख दूर कर नहीं सके, तथापि इस उद्योगमें सफल होनेके लिये उन्होंने ऐसा निःस्वार्थभाव दिखलाया कि स्वदेशप्रेमियोंको म-

वीरोंमें उनका स्थान सबसे ऊँचा है। घोर कष्टमें पड़कर उन्होंने कभी अपना व्रत तोड़नेका इरादा नहीं किया; कभी इस बातकी कामना नहीं की कि अकबर उनपर कृपा करे। वीरवर बप्पारावलका वंशधर एक मनुष्यके आगे शिर झुकाता, स्वाधीनता हर लेनेवाले शत्रुओंसे कृपा चाहता, भला यह कभी सम्भव था? प्रताप-सिंहने तो ऐसी चिन्ता भी नहीं की। उनका असीम साहस तोड़नेमें असमर्थ हो अकबरने अनेक बार उनसे सन्धिका प्रस्ताव किया, परन्तु वीरहृदय प्रतापसिंहने घृणाके साथ उसका प्रस्ताव वापस किया, बल्कि यह कहला भेजा कि—"क्या! सन्धि? स्वाधीनता छीननेवाले शत्रुओंके साथ सन्धि! इस सन्धिका मतलब क्या है? गुलामी—पराधीनता क्या इसका दूसरा नाम नहीं है?" सो प्रतापने किसी प्रकारसे सन्धि करना स्वीकार नहीं किया। अकबर उस समय बड़ा बलवान् और असीम धनका अधिकारी था, तोभी पराक्रमी प्रतापने उसके प्रस्तावकी रत्तीभर परवा नहीं की, बल्कि जिन्होंने अकबरके साथ विवाहादिका रिश्ता जोड़ लिया था उनसे उन्होंने सदाके लिये अपना सम्बन्ध तोड़ दिया। प्रतापकी अद्भुत वीरता और कार्यकुशलताका परिचय इस समय भी मेवाड़की प्रत्येक घाटीमें विराजमान है; उनके अपूर्व कामोंकी बातें आज भी हरएक सच्चे राजपूतके हृदयमें पवित्र मन्त्रकी तरह छिपी हुई हैं। संसारमें ऐसा कौन मनुष्य है जिसका हृदय प्रतापकी अद्भुत वीरता और महत्ताका वृत्तान्त पढ़कर उत्साहसे न भर जाय? शत्रु तक अपने इतिहासोंमें प्रतापके गुणोंका वर्णन किये बिना रह नहीं सके हैं। आप मेवाड़में जाइये और प्रतापके सरदारों और सामन्तोंके वर्तमान वंशधरोंसे उनके पूर्वजोंका हाल पूछिये, तो वे बड़े चावसे वह वृत्तान्त कहेंगे और आंसुओंकी धारा बहावेंगे। हाय! जो उन पुण्यस्थलोंमें जाकर नहीं घूमा, जिसने सच्चे स्वदेशप्रेमी प्रतापसिंहकी रङ्गभूमि अपनी आंखोंसे नहीं देखी, उसने कुछ नहीं किया; उसको तो यह वृत्तान्त कहानीसा जान पड़ेगा।

ऊँचे ऊँचे पदों और बहुत धन पानेकी आशासे यद्यपि बहुतसे राजपूत मुसलमानोंके पक्षमें हो गये थे; तथापि वीरवर प्रतापसिंह निस्सहाय नहीं हुए; बल्कि उनको बहुत बड़ी सहायता मिली। बहुत धन खर्च करके जो सहायता राजा नहीं पा सकता, वह प्रतापने पाई। उनकी सहायता भील और कर्मीय की;

पवित्र हृदयकी पवित्र सहानुभूति थी। उनके ऐसे ही सामन्तों और सरदारोंने उन-के साथ ऐसीही सहानुभूति दिखाई थी। क्रूर अकबरने प्रतापसे अलग करनेके लिये उन सरदारों और सामन्तोंको बहुत तरहके लालच दिखाये; किसीको बहुत धन देकर मालामाल कर देना चाहा, किसीको किसी राज्यका अधीश्वर बना देना स्वीकार किया, पर सब उद्योग वृथा हुए; उनमेंसे कोई उसके लालचमें नहीं आया। चण्ड, जयमल और पुत्तूके वीर वंशधरोंने अत्यन्त कठोर विपत्तिके समय भी प्रतापके साथ रहकर बड़े उत्साहसे अपने हृदयका रक्त बहाया। उनके वीरत्व महत्व और आत्मत्यागका वृत्तान्त मेवाड़के इतिहासमें उज्वल प्रदीपके समान विद्यमान है।

चित्तौड़में जो कुछ सुन्दरता या शोभा थी सब अकबरने नष्ट कर डाली थी। चित्तौड़की इस दीन दशाके कारण भाटोंने उसे भूषणरहित 'विधवा स्त्री" कहा है। माताका परलोकवास होनेपर शोकमें डूबे हुए पुत्र जिस तरह शोकचिह्न धारण करते और सुखकी सब चीजें त्याग देते हैं उसी तरह स्वदेशप्रेमिक प्रतापने भी मातृभूमिकी पराधीनताके शोकमें सब प्रकारका आनन्द छोड़ दिया। जो चांदी सोनेके सामान खाने पीनेके समय काममें लाये जाते थे उनको दूर करके उन्होंने वृक्षोंके पत्तोंका व्यवहार करना और कोमल बिस्तर त्यागकर घास फूंस पर सोना आरम्भ किया। स्वयं इन सुखसामग्रियोंको त्यागकर वे शान्त नहीं हुए; जिसमें कि उनके वंशधर भी ऐसाही करें इसलिये उनके लिये उन्होंने कठोर नियम किया कि जबतक चित्तौड़का इस बुरी दशासे छुटकारा न हो, जबतक चित्तौड़वासी स्वाधीन न हो जायें, तबतक सभी सीसोदियोंको इसी प्रकार रहना पड़ेगा; किसी प्रकारके सुखकी कामना नहीं करनी होगी। केवल इतनाही नहीं बल्कि जिसमें कि यह शोकचिह्न हर समय चित्तौड़वालोंके सामने रहे—जिसमें कि अपने नगरका उद्धार करनेके लिये वे उत्साहित हो उठें—प्रतापने एक और उत्तम उपाय निकाला। चित्तौड़के इस अधःपतनसे पहले राणाओंके लड़ाईमें नक्कारे सेनाके आगे आगे बजते थे, पर प्रतापने आज्ञा दी कि "अबसे नक्कारे सेना के पीछे बजा करें।" ईश्वरकी इच्छासे मेवाड़का पूर्व गौरव फिर न लौट सका, इसलिये ऊपर लिखे नियमोंका विशेषकर अन्तिम आज्ञाका पालन अबतक होता

है। अबतक ग्रीकके बाजोंकी भांति ये नगाड़े मेवाड़ी सेनाके पीछे बजते हैं। यद्यपि प्रतापके वंशधर धीरे धीरे उन कठोर नियमोंको छोड़कर सोने चांदीके पात्र व्यवहारमें लाने और कोमल गद्दियों पर सोने लगे हैं, पर अब भी वे उन बातों को बिल्कुल भूल नहीं सके हैं। अबतक वे बर्तनोंके नीचे पत्ते और पलंगोंके तले तृण रख लेते हैं।

मातृभूमिकी यह दुर्दशा देखकर बड़े दुःखके साथ वीरवर प्रतापसिंह कहते कि "यदि उदयसिंहका जन्म न होता या संग्रामसिंह और उनके बीचमें सीसोदीय कुलमें कोई उत्पन्न न होता तो कोई मुसलमान राजस्थानको अधीनताकी बेड़ियों में जकड़ न सकता।" हिन्दुओंकी उस समयकी अवस्थाका विचार करनेसे मालूम हो जाता है कि प्रतापसिंहका ऐसा कहना बहुत सच था। उनके राजगद्दी पानेसे पहलेके सौ वर्षों में हिन्दूसमाजमें एक नवीन जीवन दिखाई दिया था। गंगा और यमुनाके किनारेसे लेकर सुदूर अरावली तक जो स्थान इस समयसे पहले मुसलमानोंके अत्याचारोंसे बुरी दशाको पहुँच गये थे, उनमें प्रतापसे पहले के सौ वर्षों में नवीन बल आ रहा था और धीरे धीरे वे अपना विराट् सिर ऊँचा कर रहे थे। आमेर और मारवाड़के अधिकारी क्रमशः इतने बलवान् हो गये थे कि अकेले मारवाड़नरेश देहलीके शेरशाहके मुकाबलेमें लड़ सकते थे। इनके अतिरिक्त चम्बल नदीके दोनों किनारोंके अनेक छोटे छोटे राज्य शक्तिशाली हो रहे थे। आगे लिखा जा चुका है कि इन राज्योंके अधिकारी हिन्दू थे। उनका मुख्य उद्देश्य यह था कि हिन्दुओंकी उन्नति और सारे भारतवर्षकी भलाई हो। उन्होंने खूब बल संग्रह कर लिया था, पर उनमें एकही बात नहीं थी। यदि वह बात उनमें होती तो वे अवश्य भारतकी बादशाहतका ताज मुसलमानोंके सिरसे छीन सकते और अपना खोया हुआ गौरव पुनः पूरी तरह पाते। साहस, बल, सहाय सब बातें थीं, पर एकही त्रुटि यह थी कि कोई ऐसा सुयोग्य नेता नहीं था जो अलग अलग शक्तियोंको इकट्ठा करके एक महाशक्ति बनाता और सच्ची राजनीतिके अनुसार शत्रुओंके विरुद्ध खड़ा होता। कह सकते हैं कि वीरवर सांगा को पाकर उनकी यह कमी पूरी तरह पूरी हो गई थी। संग्रामसिंहके कुलगौरव, उनकी राजमर्यादा और उनके अच्छे अच्छे लौकिक गुणोंका विचार करनेसे कहा

जा सकता है कि वे ऊपर लिखे कामके योग्य थे। जिन उत्तम गुणोंको देखकर भक्ति और प्रीति आपके साथ उमड़ने लगती हैं वे संग्रामसिंहमें पूर्ण रूपमें विद्यमान थे। हिमालयसे रामेश्वर तक सभी स्थानोंमें उनकी प्रशंसा होती थी; सभी हिन्दू उनको भारतका उद्धारकर्त्ता मानकर उनसे बड़ी बड़ी आशाएँ किये हुए थे। पर सब बातें वृथा हुईं;—भारतके भाग्यमें मुसलमानोंका दास होना लिखा था, सो हुआ। संग्रामसिंह कुसमयमें इस संसारसे चल बसे और एकत्र किया हुआ बल तथा जातीयजीवन धीरे धीरे नष्ट हो गया। हिन्दू लोग अपने पूर्वजोंके राज्यसे एकदम वञ्चित हुए; जो होना बदा था वह हुआ; भारतवासियोंके पांवोंमें पराधीनताकी कठोर बेड़ियां पड़ गईं। यदि सांगाके बाद निर्बलहृदय उदयसिंहका जन्म न होता, यदि सांगाकी मृत्युके बाद मेवाड़के शासक महात्मा प्रताप होते, या यदि अकबरकी अपेक्षा कम शक्तिका कोई मुसलमान भारतमें सिर उठाता, तो सम्भवतः इस देशकी ऐसी दशा न होती।

अकबर बड़ा बलवान् और सहायसम्पन्न था और प्रतापसिंहके पास थोड़ी सहायता थी; ऐसी अवस्थामें किस तरह वे उसके विरुद्ध लड़ सकेंगे, कौन सा उपाय करना उत्तम होगा, यह निश्चय करनेके लिये प्रतापसिंहने विचारवान् बुद्धिमान् और विवेकवान् सरदारोंसे सलाह करके निश्चयके अनुसार काम आरम्भ किया। समयोपयोगी कामकी आवश्यकता जतलाकर उन्होंने सामन्तोंको नई नई जागीरें दीं; प्रयोजन समझकर कमलमीरमें राजधानी स्थापित की। इस नगरके साथ गोगुण्डा तथा दूसरे पहाड़ी किलोंकी मरम्मत और मजबूतीका प्रबन्ध करना आरम्भ किया। सैनिक कम थे, इसलिये प्रतापने मेवाड़की समतल भूमिमें अपना दल रखना उचित नहीं समझा। वे अपने पूर्वजोंके ढंग पर चले, अर्थात् दुर्गम पहाड़ी प्रान्तों और एकान्त स्थलोंमें अपनी सेनाएँ एकत्रित कीं और शीघ्र इस बातका ढंढोरा कर दिया गया कि "जिसे प्रतापसिंहका साथ देना स्वीकार हो वह तुरन्त बस्तियां छोड़कर परिवारके सहित पर्वतोंमें आ जाय; नहीं तो शत्रु समझा जायगा और प्राणदण्डसे दण्डित होगा।" यह सूचना पहुँचतेही प्रजाएँ अपने अपने निवासस्थानको छोड़ छोड़कर सुनसान पर्वतोंमें जाने लगीं। मनुष्योंसे मेवाड़के रास्ते भर गये। थोड़ेही दिनोंमें मेवाड़के अधिकांश स्थान उजड़े हुए दिखाई

देने लगे। यहां तक कि बुनस और बेरिस नदीके स्वच्छ जलसे सींचे जानेवाला सुन्दर हराभरा विशाल स्थान ऐसा हो गया कि वहां कोई एक चिराग जलाने-वाला भी नहीं था।

इस प्रकारकी कठोरतासे प्रतापने अपनी प्रजाओंको कठोर नियमों पर चलनेके लिये लाचार किया। इन कठोर नियमोंका पूरी तरह पालन होता है या नहीं, इस बातकी परीक्षा करनेके लिये प्रायः वे कुछ सवारोंके साथ पहाड़ोंसे उतरकर मेवाड़की नीची भूमिमें आते और सब स्थान देखभाल कर फिर लौट जाते। जो स्थान पहले मनुष्योंके कोलाहल और आनन्दध्वनिसे रात दिन प्रति-ध्वनित होते हुए सजीव मालूम पड़ते थे, वे अब बिलकुल सुनसान निर्जीव जान पड़ते थे। जो आंगन मीठी हँसीसे मानों प्रकाशमान रहते थे, वहां अब विषादरूपी घोर अँधियारी फैल रही थी। जिन खेतोंमें हरीभरी फसलोंको लहराते देखकर आंखोंको तरावट पहुँचती थी, वहां अब लम्बी लम्बी घास उग आई थी,—और जिन लम्बे चौड़े साफ रास्तों पर हर समय मनुष्य चलते फिरते दिखाई देते थे, वे रास्ते अब जङ्गली कँटीले वृक्षों और झाड़ियोंसे ढक गये थे। सो मेवाड़में अब वह सौन्दर्य्य नहीं था। जिस सौन्दर्य्यको देखकर मेवाड़भूमिको स्वर्गभूमि कहा जाता था वह अब नहीं था, बल्कि ठीक उलटी दशा थी। जिन सुन्दर इमारतोंमें अप्सराओंसी रूपवती सुन्दरियां रहती थीं, वहां अब भयङ्कर जङ्गली जन्तुओंका वास था। प्रतापसिंह बड़ी बारीकी और सावधानीसे इन सब बातोंकी परीक्षा करते थे। एक दिन अपने साथियोंके सहित बुनस नदीके किनारे अनतला नामक स्थानमें घूम रहे थे, इतनेमें क्या देखते हैं कि एक गड़ेरिया हरेभरे मैदानमें नि-र्भय अपने चौपायोंको चरा रहा है। अभागे गड़ेरियेने समझा था कि कोई उसे वहां देख नहीं सकेगा, इसलिये अपने राजाकी आज्ञाकी लापरवाई कर वह नि-र्भय वहां घूम रहा था। प्रतापसिंहने उसके पास पहुँचकर राजाकी आज्ञा न माननेके कारणके विषयमें उससे दो चार प्रश्न किये; फिर उसे मार डाला और इसलिये कि जिसमें दूसरे विद्रोहियोंको शिक्षा मिले उसकी लाशको सामनेकी एक पेड़ पर लटका दिया। प्रतापसिंहके ऐसे कठोर आचरणोंके कारण राजस्थान का "कुसुमोद्यान समान शोभायमान मेवाड़ संस्थान" सुनसान श्मशान बन गया!

अतएव फिर वहां शत्रुओंका कुछ खटका ही न रहा। धनप्राप्तिके सब रास्ते प्रताप ने एक प्रकार बन्द कर दिये; परन्तु अब अकबरके विरुद्ध घोर लड़ाई होगी, उसमें बहुत धन खर्च होगा, सो कहांसे आवेगा; प्रतापको इस बातका विचार हुआ। परन्तु उनके विश्वासी सरदारोंने इसके लिये भी एक उपाय किया। इस समय युरोपके साथ मुगलोंका बड़ा वाणिज्य व्यापार चल रहा था और व्यापारकी चीजें मेवाड़के रास्तेसे सूरत या और किसी बन्दरगाहको भेजी जाती थीं। सरदारों ने समय-समयपर सुयोगके अनुसार उन चीजोंको लूटना आरम्भ किया।

हिन्दू मुसलमानोंको भीषण लड़ाईका समय आया। एक ओर अकबर बहुत बड़ी सेनाके साथ था, दूसरी ओर प्रताप केवल थोड़ेसे सरदारों और सैनिकोंके सहित थे। प्रायः सभी राजपूतोंको मिलाकरके और सारा भारतवर्ष अकबरके अधीन था। उन्हीं पराधीन अभागे राजपूतोंका उद्धार करनेकी इच्छासे वीरवर प्रतापसिंह अकेले मुगल सेनाके विरुद्ध खड़े हुए। अकबरकी विशाल सेनाके आगे प्रतापके थोड़ेसे सैनिक किस गिनतीमें थे? बहुत बड़े समुद्रमें छोटे बुलबुलोंकी भांति थे। परन्तु प्रतापके उन थोड़ेसे राजपूत साथियोंमें जो जोश और उत्साह था वह मामूली नहीं था; उन्होंने उसी हार्दिक उत्साहके भरोसे स्वदेशके लिये प्राण तक न्योछावर कर देनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली थी। अकबरकी प्रधान सेना अजमेरमें ठहरी। युद्धके लिये उसकी ऐसी तैयारियां देखकर मारवाड़नरेश मालदेवको चिन्ता हुई और आमेरके राजा भगवानदासकी तरह वे भी मुसलमानोंके पक्षमें हो गये! इससे पहले जो व्यक्ति पठानोंके सिंह शेरशाहका अच्छी तरह मुकाबला कर सका था, जो मेरता और योधपुरका कठोर आक्रमण रोकनेमें समर्थ हुआ था, जिसने एक समय अपनेको सच्चा राजपूत बतलाकर अपना परिचय दिया था, आज दुर्भाग्यसे उसका सब साहस और तेज नहीं मालूम कहां चला गया! मालदेवने अपने बड़े पुत्र उदयसिंहको बहुतसी नजरोंके साथ अकबरके पास भेजा * जो कि उस समय अजमेरको आ रहा था। रास्तेमें नागौर नामक स्थानमें दोनों मिले। अकबर उदयसिंहसे मिलकर प्रसन्न हुआ और उसे राजाकी उपाधि दी;—तबसे मारवाड़के 'राव' 'राजा' कहे जाने लगे। कहा जाता है कि राठौर उदय

* ९७७ हिजरी (सन् १५६९ ई०)

सिंह बड़ा स्थूलकाय था इसलिये राजपूत उसको "मोटा राजा" कहते थे । इसी समय पहले पहल राठौड़ोंकी राजनीतिक उन्नतिकी जड़ बँधी; क्योंकि तभीसे वे मुगल बादशाहोंके दाहिनी ओर स्थान पाने लगे । परन्तु अपने पवित्र कुलको बट्टा लगाकर उन्होंने जो यह सम्मान पाया वह उनके पूर्वजोंके उच्च सम्मानके आगे किसी गिनतीमें नहीं था । इसके सिवा उदयसिंहने प्रथम प्रथम एक बुरा उदाहरण दिखलाया । कहा जाता है कि राजपूत होकर उसने सबसे पहले अपनी कन्या अकबरको दी । इस लड़कीका नाम जोधबाई था *। इसके बदलेमें उदयसिंह को चार बड़े बड़े राज्य मिले जिनसे वर्षमें २० लाख रुपयेके लगभग कर वसूल होता था †। इनसे मारवाड़ राज्यकी आमदनी दूनी हो गई । आमेर और मारवाड़के राजाओंने जो अनुचित उदाहरण दिखलाया थोड़ेही दिनोंमें और बहुतसे राजपूतोंने उसका अनुकरण किया । उनमें नैतिक बल नहीं था, इसलिये थोड़ेही में वे मुगलोंके लालच दिखानेमें फँसने लगे । उपाधि और थोड़ी प्रतिष्ठाके बदलेमें अमूल्य स्वाधीनता बेचकर अपने हाथोंसे मुसलमानोंकी गुलामीका तौक वे अपनी गर्दनमें पहनने लगे । इस प्रकार राजस्थानके अधिकांश राजे अकबरके वशमें होगये; उनके बड़े बड़े राज्य विराट् मुगल साम्राज्यमें मिल गये ! इन हिन्दू राजाओंसे अकबरको इतना लाभ हुआ कि इनके विषयमें मुसलमान इतिहासलेखकोंने सच लिखा है कि "सल्तनत मुगलियाके ये मजबूत सितून ‡ और कीमती जेवर थे ।"

अकबर इन राजपूतोंको साथ लेकर वीरवर प्रतापसिंहसे लड़ने चला । इससे पहले जिनके पूर्वजोंने मेवाड़के लिये अपने प्राण दिये थे आज वेही मेवाड़की दुर्दशा करनेको ठानकर मुसलमानोंके पक्षमें हुए ! राजपूत होकर राजपूतोंके

* मूल पुस्तककी एक टिप्पणीमें लिखा है कि शाहजहां इसी जोधबाईके गर्भसे उत्पन्न हुआ था । जोधबाईका मकबरा आगरेके पास सिकन्दरा नामक स्थानमें है ।—अनेक लोगोंका कथन है कि राजपूत राजाओंने मुसलमानोंको अपनी रानियोंके गर्भसे उत्पन्न कन्याएँ नहीं किन्तु दासीपुत्रियां दीं ।

† इन चारों राज्योंके नाम और वार्षिक आमदनीकी सूची यों है,—गोढ़ार ९०००००; उज्जैन २४९९१४; देवलपुर १८२५००; बुदनावर २५०००० ।

‡ स्तम्भ ।

प्रतापरूपी प्रतापसिंहके विरुद्ध वे क्यों लड़ने चले इसका एक और कारण था। मुसलमानोंके हाथों अपने कुलका बड़प्पन बेचनेके बाद उन्होंने समझ लिया था कि क्रमशः वे अधःपतित हो रहे हैं। यह वे नहीं देख सकते थे कि वे तो गिरी अवस्थामें रहें और अकेले प्रतापसिंह उन्नत हों। प्रतापसिंहसे उनको द्वेष हुआ, इसीसे उस स्वदेशप्रेमीके विरुद्ध खड़े होनेका उन्होंने साहस किया। राजस्थानके प्रायः सब हिन्दू अधिकारी लोभमें पड़कर अकबरके पक्षमें हुए; केवल बूंदीके हाड़ा नृपतिने इस अधःपतनसे अपनेको बचाया *। प्रतापसिंहने उन सब अधः-पतित राजपूतोंसे सब प्रकारका सम्बन्ध तोड़ दिया और देहली, पाटण, मारवाड़ तथा धारनगरीके प्राचीन राजाओंको तलाश करके उनसे सम्बन्ध किया। उस समय प्रतापसिंहने जो नियम बनाये उनको उनके किसी वंशधरने कभी नहीं तोड़ा; किसी सीसोदीयने अपनी कन्याओं बहिनोंको मुसलमानोंको नहीं दिया, यहांतक कि मुगल साम्राज्यकी दशा बिगड़ जानेतक भी उन्होंने आमेर और मारवाड़के नृपतियोंसे विवाहादिका नाता नहीं जोड़ा। इससे प्रतापका गौरव सौगुना बढ़ा। आमेर और मारवाड़वाले अपने किये पर पीछे आप पछताये। जब जब उनको अपने कुलका कलङ्कित होना याद आता तब तब उनको बड़ाही दुःख होता। इस वृत्तान्तकी सत्यता आमेर और मारवाड़के दो प्रधान नृपतियों की चिट्ठियां पढ़नेसे मालूम होती है। इनका नाम बख्तसिंह और जयसिंह था। एक समय वे दोनों महाशय मुगल बादशाहकी कृपासे बड़े क्षमतावान् और राजस्थानके बहुत श्रेष्ठ अधिकारी समझे जाने लगे थे। पर जब ये विचार करते तब इनको बहुतही दुःख और पछतावा होता; राजस्थानको ये हजार बार धिक्कारते और सीसोदियोंके साथ विवाहादि करनेके लिये राणाओंसे विनय करके कहते कि "महाराज, हमलोग कलङ्कित हुए हैं, राजपूत-कुलका जो मान है वह हमने मिटाया है; अतएव आप कृपा करके हमको पवित्र कीजिये, हमारा संस्कार करके हमको सच्चा राजपूत बनाइये।"

वीरवर प्रतापसिंहने अपने (सीसोदीय) कुलकी रक्षाके लिये कैसे कठिन काममें हाथ डाला था सो नीचे लिखा वृत्तान्त पढ़नेसे मालूम होगा। राजा

* इस विषयमें सविस्तर वृत्तान्त आगे चलकर बूंदीके इतिहासमें मिलेगा।

मानसिंह आमेरके कछवाहे राजपूतोंमें विशेष प्रसिद्ध हैं; उन्हींके समयमें धीरे धीरे उस राज्यकी अधिक उन्नति हुई । अकबरका दादा बाबर अपने नये पाये हुए भारत-साम्राज्यको दृढ़ करनेके लिये जो उपाय कर गया था उनमें मानसिंहके कारण अधिक सहायता पहुँच गई। राजपूतोंमें सबसे पहले मानसिंहने ही अकबरको बहन देकर बाबरका भविष्य दर्शन सफल किया । इसके आगे लिखा जा चुका है कि हुमायूंने भगवान्दासकी कन्यासे अपने पुत्र अकबरका विवाह कर दिया था; अतएव अकबर मानसिंहका बहनोई हुआ। इस सम्बन्धके बाद अकबर और मानसिंहमें विशेष मित्रता हुई। मानसिंह साहसी सुसोद और रणकुशल थे; थोड़ेही दिनोंमें मुगल साम्राज्यके सबसे अधिक प्रसिद्ध सेनापति हो गये । उन्हीं की सहायतासे अकबरने आधा राज्य जीता था। बर्फसे ढँकी ककेशस पर्वतमाला के नीचेसे लेकर सुदूर 'स्वर्ण चर्सनीस *' (नदी) तक सब स्थान एक समय मानसिंहने जय किये थे। उनकी वीरतासे मुगल साम्राज्यका जितना विस्तार हुआ था उसका अनुमान करनेसे उनकी प्रशंसा किये बिना रहा नहीं जा सकता । कछवाहे भाटोंने मानसिंहकी असीम वीरताका वर्णन बड़ी ओजस्वी कवितामें किया है। एक ओर काबुल और सिकन्दरका पारोपमिसस पर्वत; दूसरी ओर भारत समुद्रपर अराकान । इनके बीचके प्रायः समस्त राज्य मानसिंहने मुगल साम्राज्यमें मिलाये । मानसिंहका हिन्दू होकर शास्त्रकारोंके विरुद्ध काम करने अर्थात् सिन्धु नदके पार जानेका विशेष कारण था। वह कारण अकबरका मनुष्यके मनकी बात जान लेनेकी शक्तिके सिवा और कुछ नहीं था † । शोलापुरकी

---

* 'Golden Chersonese.'

† काबुल राज्य भी उस समय मुगल-साम्राज्यके अन्तर्गत था । अकबरका छोटा भाई मिरजा हाकिम वहांका शासनकर्त्ता था । लालचमें पड़कर काबुल राज्यका स्वतन्त्र अधिकारी बन जानेके अभिप्रायसे वह विद्रोही हो गया। अकबरने मानसिंहसे कहा कि आप उसे पराजित करनेके लिये सेनाके सहित जाइये । भारतवर्षसे काबुल जानेमें सिन्धुनद पार करना पड़ता था और सिन्धुपार जानेसे हिन्दूशास्त्रके मतसे जातिभ्रष्ट होना पड़ता था; इसलिये मानसिंहने कहा कि हम

लड़ाई जीतकर राजा मानसिंह लौट रहे थे; रास्तेमें उन्होंने प्रतापसे मिलनेकी इच्छाकर उनके पास बुलावा भेजा। प्रतापसिंह उस समय कमलमीरमें थे; आमेर नरेशके आनेका समाचार पाकर वे उनसे मिलनेके लिये उदयसागर तक गये। इसी सरोवरके किनारे भोजका प्रबन्ध हुआ। भोजनकी चीजें तैयार और एकत्र की गईं। राजकुमार अमरसिंहने राजा मानसिंहका सत्कार किया। मानसिंहने भोजनपर बैठतेही राणा प्रतापसिंहके विषयमें पूछा और उनको वहां न पाकर उनके मनमें बहुत सन्देह उत्पन्न हुआ। अमरसिंहने नम्रताके साथ उत्तर दिया - "पिताजीके शिरमें पीड़ा थी इसीलिये वे न आ सके।" पर इससे मानसिंहका सन्देह और भी बढ़ गया; कुछ गर्व और सम्मानपूर्ण स्वरमें उन्होंने कहा 'राणा जीसे कहो कि मैं उनके शिरके दर्दका असल कारण समझ गया। जो होना था वह तो हो गया। भ्रमके दूर करनेका कोई उपाय नहीं है। यदि वे मेरे साथ भोजन नहीं करेंगे तो दूसरा कौन करेगा?" प्रतापसिंहने और बहुतसे बहाने कहला भेजे; पर किसी तरह मानसिंहका सन्देह नहीं मिटा, उन्होंने भोजन नहीं किया। आखिर राणाजीने कहला भेजा—"जिस राजपूतने तुर्कको अपनी बहन दी, जिसने कदाचित् तुर्कके साथ बैठकर भोजन किया, सूर्यवंशी बप्पारावलका

नहीं आयेंगे। अकबरने न जानेका कारण पूछा तो मानसिंह ने यही कहा। तब चतुर अकबरने नीचे लिखी कविता पढ़ी,—

"सबहि भूमि गोपालकी,
यामे अटक कहा।
जाके मनमें अटक है,
सोई अटक रहा॥"

अर्थात् 'यह सारा संसार ईश्वरका है और आपने जिस अटक (सिन्धुनदके पासके स्थान) की बात कही वह भी इसी संसारमें है। अतएव जिसके मनमें अटक (रुकावट) है वही अटक (रुक) रहेगा।'—यह सरस भावभरी कविता सुनकर मानसिंहने चिन्ता छोड़ दी और काबुलकी ओर यात्रा की। अकबर मानसिंहका स्वभाव जानता था, इसलिये उसने मीठी बातोंसे काम निकाला, क्योंकि कड़ाईसे काम कभी न होता।

हेंगधर उनके साथ भोजन नहीं कर सकता।" राजा मानसिंहने अपनेही हाथों अपना अपमान किया; राणा प्रतापसिंहने उनको कुछ निमन्त्रण नहीं भेजा था और वे इनकी प्रतिज्ञा जानते थे कि उन्होंने सबसे प्रबन्ध तोड़ दिया है। यदि प्रताप सिंह स्वयं निमन्त्रित करके मानसिंहके साथ ऐसा बर्ताव करते तो अवश्य उनका दोष समझा जाता; पर जब ऐसा नहीं हुआ तब वे बिलकुल निर्दोष थे; अपने अपमानके कारण स्वयं राजा साहब थे।

राजा मानसिंहने भोजन नहीं किया; केवल अन्नके कई दाने जो अन्न देवता को चढ़ाये थे उठाकर अपनी पगड़ीमें रख लिये और फिर वहांसे वे उठकर चलने लगे। इतनेमें प्रतापसिंह वहां पहुंच गये। मानसिंहका हृदय अभिमानसे भर गया; उन्होंने कहा—"आपहीके गौरवसंभ्रमकी रक्षाके लिये हमलोगोंने अपना गौरव खोया है; परन्तु यदि सदा विपत्तिमें ही रहनेकी आपको इच्छा हो तो यह इच्छा शीघ्र पूरी होगी। मेवाड़में आपको स्थान नहीं मिलेगा।" इसके बाद घोड़ेपर सवार हो और प्रतापपर टेढ़ी दृष्टि डालकर कहा—"जो मैं तुम्हारा मान न मिटाऊँ तो मेरा नाम मानसिंह नहीं।" प्रतापसिंहने घृणाके साथ इसका यह उत्तर दिया—"अच्छा अच्छा, आपकी बातसे मैं सन्तुष्ट हुआ। लड़ाईके मैदानमें आपको देखकर बड़ी प्रसन्नता होगी।" इसी समय प्रतापसिंहका एक माथी यह दुमानी बात कह उठा—'देखना, अपने 'फूफा' अकबरको साथ लाना भूल न जाना।" जिस जगह मानसिंहके लिये भोजनकी चीजें बनाई गई थीं उसे अपवित्र मानकर प्रतापसिंहने आज्ञा दी कि यह इसी समय शुद्ध जलसे धोकर साफ किया जावे। जो सरदार, सामन्त और राजपूत वहां उपस्थित थे वे सब मानसिंहको जातिभ्रष्ट जानकर उनसे बहुत घृणा करते थे। इस अवसरपर उन्होंने राजा मानसिंहको अपने सामने देखकर उन्होंने अपना पतित होना समझा और उनका मुख देखनेके पापसे अपना उद्धार करनेके लिये स्नान किया तथा कपड़े बदले। उस दिन उदय-सागरके किनारे जो जो बातें हुईं सब अकबरके कानोंतक पहुँचीं। मानसिंहका अपमान होनेसे उसने अपना अपमानित होना समझा और उसके क्रोधकी आग भड़क उठी। वह समझता था कि राजपूतोंका प्राचीन विश्वास बिलकुल बदल गया है; पर अब उसे मालूम हुआ कि उसने धोखा खाया। अस्तु,

राणा प्रतापसिंहसे बदला लेनेके लिये वह लड़ाईकी बड़ी बड़ी तैयारियां करने लगा। इसके बाद लड़ाईकी जो भयानक आग भड़की उसीसे प्रतापसिंह अमर हो गये, स्वदेशप्रेमियोंमें उनका स्थान सबसे ऊंचा हो गया। जिस जगह लड़ाई हुई वह 'हल्दीघाट' के नामसे प्रसिद्ध है। जबतक मेवाड़का शासनकार्य किसी शीसोदीयके हाथमें रहेगा या प्रतापकी वीरता और कीर्त्ति गानेके लिये एक भी भाट जीवित रहेगा, तबतक पुख्यस्थल 'हल्दीघाट' का नाम कोई भूल नहीं सकेगा।

अकबरका ज्येष्ठ पुत्र और भावी उत्तराधिकारी शाहजादः सलीम पहली लड़ाईमें विशाल मुगल सेनाका नायक होकर आया। सागरजीका जातिभ्रष्ट विख्यात पुत्र महाबतखां और राजा मानसिंह उसके सलाहकार हुए। परन्तु वीरवर प्रतापसिंहके मददगार कौन लोग थे? बाईस सहस्र राजपूत और कुछ थोड़ेसे भील। किन्तु स्वयं उनका और उनके साथियोंका अद्भुत उत्साह ही उनका मुख्य सहाय था। इसी पर भरोसाकर उन्होंने बहुत बड़ी मुगल सेनाके विरुद्ध लड़ाईके मैदानमें खड़े होनेका साहस किया। बादशाही सेना पहले तो बिना किसी रुकावटके अरावलीके बाहरके पहाड़ी स्थानमें पहुँची, उसके बाद उन टेढ़ेमेढ़े पर्वतों के पश्चिम ओर जो जरा सुगम मार्ग है उधरसे होकर अरावलीके प्रधान पहाड़ी पथपर पहुंची।

इसी लम्बे चौड़े दुर्गम दुर्भेद्य पहाड़ी प्रदेशमें वीरवर प्रतापसिंह बड़ी सावधानीसे रहते थे। वह स्थान नवीन नगर उदयपुरके पश्चिम ओर था। लम्बाई उसकी दस योजन थी और चौड़ाई भी प्रायः चालीस कोस। वह समचतुष्कोण लम्बा चौड़ा प्रदेश केवल जङ्गल और पर्वतमय था। बीच बीचमें छोटे छोटे अनगिनत नाले बहते थे। उदयपुरको इस दुर्गम पहाड़ी प्रदेशका मध्यस्थल कह सकते हैं। उदयपुरके जिस ओर होकर वहां जाना पड़ता है वह बहुत दुर्गम और तङ्ग पहाड़ी रास्ता है। वे रास्ते इतने तङ्ग हैं कि उधरसे कदाचित् दो गाड़ियां किसी प्रकार आ जा सकती हैं। उस घने दुर्गम पहाड़ी प्रदेशके बीच खड़े होकर जिस ओर दृष्टि डालिये उधरही ऊंचे ऊंचे पर्वतों और घने पत्तोंवाले वृक्षोंके सिवा और कुछ दिखाई नहीं देगा। इसी प्रदेशका नाम 'हल्दीघाट' है। इसी हल्दीघाटके

पर्वतोंके नीचे और ऊपर बहुत दूरतक अस्त्रशस्त्रसे सज्जित होकर राजपूत वीर लोग बड़ी सावधानीसे खड़े हुए। उनके सहायक विश्वासी पहाड़ी भील पर्वतोंकी चोटियोंपर तीर धनुष लिये डट गये। उनके आगे बड़ी बड़ी पहाड़ी चट्टानें थीं। उन्होंने सोचा कि या तो हथियारोंसे शत्रुओंको छिन्नभिन्न कर देंगे या पत्थर बरसाकर उनका नाश करेंगे।

उसी दुर्गम हल्दीघाटके भयानक स्थानमें वीरवर प्रतापसिंह प्रधान प्रधान वीरकुलोंके साथ शत्रुओंकी बाट देखने लगे। संवत् १६१२ (सन् १५७६ ई०) के श्रावण महीनेके सातवें दिन दोनों दलोंका सामना हुआ और भयानक लड़ाई आरम्भ हुई। ऐसा भयानक समर—स्वाधीनताकी रक्षाके लिये ऐसा कठोर उद्यम—भारतवर्ष और ग्रीस देशके सिवा संसारके दूसरे किसी देशमें कदाचित् कभी नहीं हुआ। मुसलमानोंके ग्राससे मेवाड़भूमिकी स्वाधीनता और गौरव बचानेके लिये प्रतापके सहकारी राजपूत बड़े उत्साहके साथ दमके दल मुगल सैनिकोंकी ओर बढ़ने लगे। वीरवर प्रतापसिंह निर्भय भावसे सबके आगे थे और शत्रुओंका सैनिक क्रम बिगाड़ देनेका उद्योग करते थे। प्रतापसिंहका उद्योग सफल हुआ; उनके असाधारण उद्योगसे शत्रुओंका व्यूह टूट गया। उनकी रणनिपुणता, अद्भुत साहस और उद्योग देखकर उनके सामन्त और सरदार बड़े उत्साहित हो गये। उस छत्रभङ्ग दलित मथित और घबराई हुई सेनामें प्रतापसिंह जोशमें भरे हुए दौड़ दौड़कर राजा मानसिंहको ढूंढ़ने लगे; परन्तु कहीं उनको पता नहीं लगा। कितने ही सौ मुगल वीर उनकी तलवारके आगे पड़कर दो टुकड़े हुए; कितने युद्धकुशल शत्रु उनके भालेकी नोककी चोट खाकर सदाके लिये इस संसारसे चल बसे; तोभी प्रतापका हाथ कोई रोक नहीं सका। मानसिंहको ढूंढ़ते ढूंढ़ते वे सलीमके सामने पहुँचे। उसे देखकर उनका साहस, उत्साह और जोश दूना हो गया। तलवार खींचकर अपने प्यारे घोड़े चैतकको उन्होंने आगे बढ़ाया। उनकी तलवारके प्रचण्ड वारोंसे सलीमके शरीररक्षक बातकी बातमें टुकड़े टुकड़े होकर जमीनपर पड़े दिखाई देने लगे। तब प्रतापने स्वयं सलीमकी ओर घोड़ा बढ़ाया। मानों उनका घोड़ा चैतक भी मालिकका जोश देखकर उत्साहसे भर गया। उसने सलीमके हाथीपर चोट की। प्रतापने सलीमपर बर्छा चलाया। वह जाकर हौदेमें

गया और सलीम बच गया; पर हाथीका महावत मारा गया। महावतके मारे जानेसे हाथी निरङ्कुश हो गया और उसी समय सलीमको लिये हुए बड़े जोरसे लड़ाईके मैदानसे भागा! यद्यपि उस बारसे सलीम बच गया पर वीरवर प्रताप सिंहने उसका पीछा नहीं छोड़ा, भागे हुए हाथीके पीछे पीछे उन्होंने भी अपने 'चेतक' को दौड़ाया। उस समय दोनों दलोंमें लड़ाईका जोश अधिक बढ़ गया। एक ओर अनगिनत मुगल सैनिक अपने शाहजादेको बचानेके लिये लगातार तलवारें चलाने लगे, दूसरी ओर निडर दृढ़प्रतिज्ञ थोड़ेसे राजपूत वीर प्रतापके उद्योगमें सहायता पहुंचानेके लिये जी जानसे लड़ने लगे। उस समय भी कई सौ मुगल सैनिक मारे गये। पर कुछ लाभ नहीं हुआ। दलके दल मुसलमान सैनिक मारे जाते थे, फिर दलके दल दूसरे सैनिक राजपूतोंसे लड़नेके लिये उनकी जगह आ पहुंचते थे। लड़ते लड़ते बहुतसे राजपूत सिपाही वीरगतिको गये, धीरे धीरे प्रतापका पक्ष कमजोर होता गया; पर किसीने उस ओर ध्यान नहीं दिया। प्रतापसिंह मानसिंहको ढूंढ़ रहे थे। उनके सिरके ऊपर मेवाड़का राजछत्र था; शत्रु लोग उस छत्रपर चारों ओरसे आक्रमण करने लगे। कुछ समय पहले इसी राजचिह्नके कारण तीन बार वे सङ्कटमें पड़ चुके थे और अपने उद्योग तथा वीरत्वसे बच गये थे, पर इस बारका सङ्कट भारी था। तौभी उन्होंने वह राजचिह्न अपने सिरसे नहीं हटाया। इस बार वे लड़तेलड़ते शत्रुओंकी सेनाके बीचमें जा पड़े; आसपास कोई सरदार नहीं था; जिधर देखते थे उधर शत्रुही शत्रु दिखाई देते थे। प्रतापने अपनी अवस्था समझी; समझ लिया कि उनका जीवन सङ्कटमें है; पर तौभी वे निरुत्साह नहीं हुए। बड़े उद्यम और अद्भुत तेजोसे तलवार चलाते हुए वे शत्रुसेनामें इधर उधर झूम रहे थे। लगातार तलवारोंके वारोंसे उनके शरीरपर ७ घाव * हो गये और इनके कपड़े खूनसे रङ्ग गये; तथापि प्रताप जरा भी श्रान्त क्लान्त और सुस्त नहीं हुए। पर अकेले कबतक लड़ सकते? उन्होंने सोचा कि यदि अधिक देरतक इसी अवस्थामें रहेंगे तो यहीं अन्त हो जायगा; इसलिये बड़ी सावधानीसे लड़ते लड़ते वहांसे बाहर निकलनेका उद्योग करने लगे। इतनेमें दूरसे "जय प्रतापकी जय" की ध्वनि सुनाई दी। प्रतापके

* भालेसे तीन, गोलीसे एक और तलवारसे तीन।

हृदयमें दूना उत्साह भर गया। सादड़ी झालाका सरदार मन्ना दलबल सहित उछल कर प्रतापके पास आ पहुँचा; उसने अपना जीवन देकर प्रतापके प्राण बचाये। अर्थात् प्रतापके सिरके ऊपरका छत्र (राजचिन्ह) हटाकर अपने ऊपर धर लिया और स्वर्णपताकाके साथ शत्रुओंके दलमें प्रवेश किया। राजचिन्ह उसके साथ देख कर शत्रुओंने उसेही राणा समझा; अतएव उसीकी ओर तलवारें खींचे हुए वे दौड़े। इधर दूरसे प्रतापने देखा कि वीरवर मन्ना बड़े साहसके साथ लड़ता लड़ता अन्तमें अपने सैनिकोंके सहित वीरगतिको गया। इस अपूर्व कामके बदलेमें मन्ना के वंशधर राजचिन्होंके साथ राणाजीके दाहिने हाथ बैठते हैं *। वीरवर प्रताप-सिंहके उत्साहसे उत्साहित होकर यद्यपि राजपूत सैनिक बड़े साहससे लड़ते थे, परन्तु कुछ अच्छा परिणाम नहीं हुआ। एक तो शत्रु सौगुने अधिक थे, जिसपर वे गोली बारूदकी सहायतासे लड़ते थे, अतएव प्रतापके सैनिक उनके आगे कब तक ठहर सकते? उनमेंसे अधिकांश मारे गये; अर्थात् बाईस सहस्र राजपूतोंमेंसे इस भीषण लड़ाईके बाद केवल आठ सहस्र जीवित बचे!

हल्दीघाटकी प्रथम दिनकी लड़ाई समाप्त करके वीरवर प्रतापसिंह चेटक घोड़ेपर सवार अकेले लौट रहे थे। उनके सारे अङ्ग घायल और रक्ताक्त हो रहे थे और लड़ाईकी थकावटसे वे बहुत सुस्त थे। उनका प्यारा घोड़ा चेटक भी बहुत थक गया था; तौभी अपने मालिकको लिये सुनसान पहाड़ी प्रान्तमें चला आ रहा था। पर प्रतापसिंह वहां भी निरापद नहीं हुए। मुगल सेनाके दो सिपाही उनको जाते देखकर चुपचाप उनके पीछे हो लिये। उनमें एक मुलतानी था, दूसरा खुरासानी। राणाजीका पीछा करते करते वे एक तेज तथा गहरे छोटे पहाड़ी नालेके किनारे पहुँचे। चेटक एकही उछालमें नालेके पार निकल गया; इधर दोनों सैनिकोंको कुछ देर रुकना पड़ा; इतनेमें पीछेसे गोली छूटने

* टाड साहब लिखते हैं कि स्वामिभक्त वीरवर मन्नाके वर्त्तमान वंशधर सादड़ी राज्य और प्रतापकी दी हुई दूसरी हस्तियां अबतक भोग करते हैं। उनके नक्कारे राजद्वारतक उनके साथ बजते हुए जाते हैं। ऐसा सम्मान दूसरे किसीको नहीं मिला है। इसके सिवा उनको 'राजा' की उपाधि भी प्राप्त है।

की आवाज आई और किसीने प्रतापको मातृभाषामें गम्भीर स्वरमें पुकारा—"हो ! नील घोड़ारा असवार !" प्रताप चौंक उठे और आश्चर्यके साथ उन्होंने पीछे पलटकर देखा। उस समय अपने पीछे उनको जो दिखाई दिया उसे देखकर उनका आश्चर्य और क्रोध सौगुना बढ़ गया। उन्होंने देखा कि एक सवार तेजीसे चला आ रहा है। वह सवार उनका भाई शक्तसिंह था !

शक्तसिंह प्रतापका भाई था। दोनों भाई झगड़ा करके अलग हो गये; इसके बाद शक्तसिंह बड़े भाईका राज्य त्यागकर अकबरसे जा मिला और विचार किया कि भाईको मारकर इस झगड़ेका फैसला करेंगे। परन्तु हल्दीघाटकी लड़ाईके बाद जब उसने देखा कि प्रतापसिंह नीले घोड़ेपर सवार होकर अकेले लड़ाईके मैदानसे चले जा रहे हैं तब भाईके जीवन और स्वाधीनताको सङ्कटमें देखकर उसका मन पिघल गया। पिछली बातोंका उसे बहुत दुःख और पछतावा हुआ और भाईको विपत्तिसे बचानेके लिये मुगल सेना छोड़कर वह उनके पीछे चला। रास्तेमें दोनों मुगल सैनिकोंको मारकर वह प्रतापसिंहके पास पहुंचा। दूरसे उसे आते देखकर राणाके मनमें बहुत सन्देह हुआ। उन्होंने सोचा—"तो क्या शक्तसिंह बदला लेनेके लिये आ रहा है? मेरी इस निस्सहाया अवस्थामें क्या वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने आता है?" प्रतापसिंह घायल शेरनीकी तरह गर्ज उठे और तलवार खींचकर शक्तसिंहके पास आनेकी राह देखने लगे। परन्तु पीछे छोटे भाईका मलिन, दुःखपूर्ण और लज्जासे झुका हुआ मुख देखकर उनका सन्देह दूर हुआ। फिर जब वह पास आ और उनके पांवोंपर गिरकर रोता हुआ क्षमा मांगने लगा तब प्रतापका हृदय आनन्दसे भर गया। आज बहुत दिनोंके बाद दोनों भाई परस्पर गले मिलकर सब कष्ट और दुःख भूल गये; आँसूकी बड़ी बड़ी बूंदें गिरने लगीं। इस आनन्दके समय प्रतापका प्यारा घोड़ा चेटक (जो बहुतही थका हुआ था) गिरकर मर गया! चेटक सच्चे वीरका सच्चा घोड़ा था; उसीके गुणसे उस दिन प्रतापसिंह बहुत बड़ी सेनाके बाहर बचकर निकल आये थे। वे जानते थे कि वास्तवमें चेटकने ही उनका जीवन बचाया है। इस समय उसी चेटकको मरते देखकर प्रतापसिंहको आनन्दमें दुःख हुआ; असीम हर्षमें बाधा पड़ गई। तब शक्तसिंहने उनको अपना घोड़ा दिया। इस घोड़ेका नाम अङ्कारो

था। लाचार होकर अन्तमें प्रताप उसीपर सवार हुए। जिस जगह चेटककी मृत्यु हुई थी पीछे वहां उसकी वेदिका बनाई गई *।

बहुत दिनोंके बाद यदि प्रिय सम्बन्धी मिलें तो बड़ा सुख प्राप्त होता है; परन्तु प्रताप और शक्तसिंहके भाग्यमें यह बात नहीं थी। पीछे कदाचित् सलीम को कुछ सन्देह हो इसलिये शक्तसिंह पुनः मुगल सेनामें चला गया। आगे कहा जा चुका है कि जो दो सैनिक प्रतापके पीछे पीछे आ रहे थे और जिनको शक्तसिंहने मारा था उनमें एक खुरासानी था और दूसरा मुलतानी। शक्तसिंह खुरासानी सिपाहीके घोड़ेपर सवार होकर सलीमके दरबारमें पहुंचा; परन्तु जिस बातकी उसको शङ्का थी आखिर वही हुई। उसका देर करके पहुंचना और रङ्गढङ्ग देख कर सलीमको सन्देह हुआ। सलीमने उन दोनों खुरासानी और मुलतानी सैनिकोंका हाल पूछा तो शक्तसिंहने कुछ आगापीछा करके कहा—"उनको प्रताप ने मार डाला है; इतनाही नहीं बल्कि मेरे घोड़ेको भी मारा है; इसीलिये मैं खुरासानीके घोड़े पर सवार होकर आया हूं।" उसे आगापीछा करते देखकर सलीमने कहा—"अगर सच सच तमाम बातें बयान कर दो, तो हम तुम्हारा बिलकुल कुसूर मुआफ कर देंगे।" इसपर शक्तसिंहने गम्भीर और निडर भावसे कहा—"एक बड़े राज्यका बोझ मेरे भाईके ऊपर है; सहस्रों लोगोंका सुख दुःख केवल उन्हीं पर निर्भर करता है। इस समय वे विपत्तिमें पड़े हैं; उस विपत्तिसे उनका उद्धार किये बिना मैं निश्चिन्त कैसे हो सकता हूं?" सलीम चुप रहा; अपनी प्रतिज्ञा याद कर उसने शक्तसिंहसे इसके सिवा कुछ नहीं कहा कि अब आप यहांसे चले जाइये। ऐसा होना शक्तसिंहके लिये अच्छाही हुआ। उसी समय वह भाईसे मिलनेके लिये उदयपुर चला। उदयपुर आते समय रास्तेमें भिनसरोर दुर्ग पर आक्रमण करके उसने उसे जीत लिया और भाईके पास पहुँचकर कहा कि यह दुर्ग आपकी नजर है। उदारहृदय प्रतापसिंहने उसे शक्तसिंहको ही दे दिया। यह

* यह वेदिका अबतक 'चेटकका चबूतरा' के नामसे प्रसिद्ध है। यह वर्तमान बलीचाके निकट है। ऊपर लिखा वृत्तान्त पढ़नेसे पाठकोंको मालूम हुआ होगा कि चेटक प्रतापसिंहका अत्यन्त प्यारा घोड़ा था। प्रतापसिंहके चित्रके साथ इस घोड़ेका चित्र भी मेवाड़के घर घरमें देख पड़ता है।

दुर्ग बहुत दिनोंतक उनके वंशधरोंके अधिकारमें रहा *। विपत्तिके समय प्रताप का जीवन बचानेके कारण शक्तसिंहका बड़ा नाम हो गया। उसके महत्व और गौरवकी बातें भाटोंके मुखसे अबतक सुन पड़ती हैं; अबतक उसके किसी वंशधर को देखकर भाट लोग आनन्दसे बोल उठते हैं कि "खुरासानी मुलतानीका अग्गल †।"

संवत् १६३२ (जुलाई सन १५७६ ई०) के श्रावण मासकी सप्तमीका दिन हिन्दुओंके गौरवके विषयका एक प्रसिद्ध दिन है। जबतक मनुष्य लोग वीरत्व और महत्वकी पूजा करते रहेंगे, जबतक राजपूत जाति संसारमें रहेगी, तब तक उस दिनकी घटनाकी बात मनुष्यजातिके इतिहासमें आगके चमकते हुए अक्षरोंमें विराजमान रहेगी, तबतक वह दिन कालचक्रका यह भीषण घुमाव प्रकाश करेगा। उस दिन पुण्यभूमि हल्दीघाटकी पथरीली छाती और पहाड़ी जमीन मेवाड़के अत्यन्त साहसी पुत्रोंके पवित्र खूनसे सींची गई थी। जो १४ सहस्र वीर उस दिन वीरगतिको गये थे उन सबका परिचय देना सम्भव नहीं है; तौभी उनमें जो प्रसिद्ध हो गये हैं उनका संक्षिप्त हाल लिखा जाता है।

राणा प्रतापसिंहके बहुत निकटके पांचसौ सम्बन्धी और गवालियरका पदच्युत नृपति रामशा ‡ अपने पुत्र खाण्डेराय तथा ३५० तुआर वीरोंके सहित उस दिन

* शक्तसिंहकी माता मेवाड़की "बाईजी राज" अर्थात् बड़ी महारानी थीं; पर वे बड़े पुत्र प्रतापसिंहके यहां न रहकर छोटे प्यारे पुत्र शक्तसिंहके साथ भिनसरोरमें रहती थीं. इसलिये यह बात सहज समझमें आ सकती है कि राजमाताके योग्य जो सम्मान है उस सम्मानसे वे सम्मानित नहीं होती थीं। शक्तसिंह उनको बहुत प्रिय था इसीलिये उस सम्मानकी उनको चिन्ता नहीं थी और वे उसे छूना नहीं चाहती थीं। इसी कारण शक्तसिंहके वंशधरोंकी माताएँ "बाई जी राज" कही जाती हैं।

† अर्थात् खुरासानियों और मुलतानियोंके सुख सौभाग्यका रास्ता बन्द करनेवाला।

‡ जब बाबरने रामशाके पुरखोंको गवालियरसे हटा दिया तब वे मेवाड़को भगे। राणाजीने उनको आदरपूर्वक ग्रहण किया और उनके खर्चके लिये ८००) रु० दैनिक नियत कर दिया। तभीसे वे और उनके वंशधर मेवाड़में रहते आये हैं।

ही वीरता और सची रणकुशलताका परिचय देते हुए समरभूमिमें लड़कर स्वर्गवासी हुए थे सबसे अधिक आश्चर्यमयी वीरता झाला सरदार मन्नाने दिखाई थी। सबको बात छोड़कर केवल उसीका अद्भुत वीरत्व उस दिनके गौरवको सदा सर्वदा स्थिर रख सकता है। जिस समय वीर मन्ना १५० सामन्तोंके सहित समुद्रकी तरह चारों ओर फैली हुई मुगल सेनाके बीच खड़ा अत्यन्त साहससे युद्ध कर रहा था। और पीछे जब वह मुगल सैनिकोंको दुर्दशा और घबराहटमें डालकर अपने साथियोंके साथ मारा गया; उस समय जिस किसीने उसकी आश्चर्यमयी वीरता और रणकुशलता देखी वह बारम्बार उसकी प्रशंसा किये बिना रह न सका। उस दिनकी बात कोई अबतक भूल नहीं सका है। उस दिन मेवाड़का हरएक वीर वंश वीरशून्य हो गया;—अनेक सुरूपा सुवीरा सुन्दरियोंके सिरोंका सिन्दूर सदाके लिये साफ हो गया।

लड़ाई जीतकर सलीम हल्दीघाटके पहाड़ी प्रदेशसे चला गया। बरसातके कारण सब नदी नाले भर गये थे और रास्ते दुर्गम हो गये थे; अतएव शत्रुओंके कामोंमें रुकावट पड़ी। यह सुयोग पाकर प्रतापसिंहने कुछ दिन विश्राम किया। परन्तु वसन्त ऋतु आतेही जब रास्ते पुनः साफ हो गये तब मुगल सैनिकोंने पुनः आक्रमण किया। प्रताप फिर लड़ाईके मैदानमें पहुंचे। दुर्भाग्यसे इस युद्धमें भी वे हारे और उदयपुर छोड़कर कमलमीरमें चले गये *; किन्तु वहां भी निश्चिन्त नहीं रहने पाये; शीघ्रही मुगल सेनापति कोका शहबाजखांने आकर उस किलेको घेरा। बहुत दिनोंतक प्रतापसिंह उसी दुर्गमें रहे पर स्वदेशद्रोही आबूके देवर अधिकारीके कारण वह स्थान भी उनसे छूटा। कमलमीरमें "नागन" नामक एक बड़ा कुवां था, इसी कुवेंसे दुर्गवालोंको जल मिलता था; पर आबूके दुष्ट अधिकारीने यह बात जानकर मुगलोंसे कह दी और सलाह दी कि इस कुवेंका पानी खराब और जहरीला कर दिया जावे। जब ऐसा हो गया तब प्रतापको जलका बहुत कष्ट होने लगा। आखिर कमलमीर छोड़कर वे चौंद † नामक पहाड़ी

* संवत् १६३३ (सन् १५७७) की माघ शुक्ला सप्तमीको यह युद्ध हुआ।

† मूल पुस्तककी टिप्पणीमें लिखा है—"मेवाड़के दक्षिण पश्चिम ओर पहाड़ोंमें छप्पन नामक एक भीलराज्य है। चौंद इसी राज्यके एक छोटे नगरका नाम है। छप्पनमें १८५ नगर और गांव हैं। प्रायः उन सभोंमें भील रहते हैं।"

किलेमें गये। मुगलोंने वहां भी आकर घेरा डाला। अग्निकुल सरदार भानुसिंह चौंदको शत्रुओंसे बचानेके लिये लड़ा और मारा गया। इस कठोर उद्योगमें मेवाड़का एक प्रधान भट्टकवि भी वीरगतिको गया। उस समय हृदयको उत्साहसे भर देनेवाले उसके लड़ाईके गीत सुन और उसकी रणकुशलता देखकर सभी राजपूत वीर इतने उत्तेजित हुए थे कि सब स्नेह ममता भूलकर "कठोरहृदय" मुसलमानोंका आक्रमण व्यर्थ करनेके लिये उन्होंने दृढ़ उद्योग किया था। उस समय जो ओज दिखानेवाली कविताएँ उस वीरने रची थीं उनको अब भी मेवाड़वासी बड़े उत्साहसे कहते और सुनते हैं। पर उसके मरनेके बाद भी वीरवर प्रतापसिंहकी असाधारण वीरताकी कविताएँ बनीं। यहांतक कि हिन्दुओं या मुसलमानोंमेंसे जिसमें थोड़ी भी कविता करनेकी शक्ति थी वह भी प्रतापसिंहके विषयमें कुछ न कुछ अवश्य कह गया है। इसके सिवा कवियोंने प्रतापके गुणोंका वर्णन करनेमें एक दूसरेकी कविता रचनामें हरानेका यत्न किया है। वे सब कविताएँ इतने जोशसे भरी हैं कि उनके पढ़नेसे निर्जीव और निस्तेज आदमीके हृदयमें भी नवीन उत्साह पैदा हो जाता है। अतएव यह सहजमें समझा जा सकता है कि वीरहृदय राजपूतोंको वे कविताएँ कितनी रोचक और प्रिय होंगी।

कमलमीरके पहाड़ी दुर्गपर मुसलमानोंका अधिकार हो जानेके बाद मानसिंहने धर्मेती और गोगुण्डा नामक दो और किलोंका घेरा किया। इधर महाबत खांने उदयपुर पर अधिकार किया; अमीशाह नामक मुसलमान राजकुमारने चौंद और अगुणापानोरके बीचमें आकर प्रताप और भीलोंका सब सम्बन्ध तोड़ दिया; उधर फरीदखां चप्पन पर आक्रमण करके दक्षिण ओरसे प्रतापके आश्रय स्थान चौंद तक पहुंच गया। सो चौंदके किसी ओर शत्रुओंसे छुटकारा न मिल सका। इस प्रकार चारों ओरसे घिरकर वीरवर प्रतापसिंह बिलकुल निःसहाय हो गये। जो मेवाड़भूमि समग्र उन्हींकी थी, जहां उनके पूर्वजोंने निश्चिन्तताके साथ बहुत काल तक शासन किया था, आज उसी मेवाड़के नगर गांव बस्ती दुर्ग सब जगह शत्रु थे! प्रताप क्षण भर भी कहीं स्थिर होकर रहने नहीं पाये! मुगलोंके सैनिक मेवाड़के जङ्गल जङ्गल कन्दरा कन्दरा शिखर शिखर घूम घूमकर प्रतापसिंहको ढूंढ़ने लगे; पर आश्चर्यकी बात है कि कोई उनको

जा नहीं सका। नहीं मालूम कैसे प्रतापसिंह अदृश्य थे। यह बात नहीं थी कि वे डरके मारे भागते फिरते थे; बल्कि चुपचाप छिपे स्थानोंमें रहकर शत्रुओंको प्रत्येक चाल बड़ी सावधानीसे देखते और जब अवसर पाते तभी उनपर टूट पड़ते थे। शत्रु लोग जब यह अनुमान करके उनका पीछा करते कि वे इन घने वनमें छिपे हैं, तब वे प्रतापसिंहको प्रायः ऊंचे पर्वतकी चोटी पर सरदारोंके सहित बैठे कुछ सलाह करते पाते। इस प्रकार छोटी छोटी लड़ाइयोंमें बहुत दिन बीत गये। अनेक तरहके उद्योग करने पर भी शत्रु लोग प्रतापसिंहको पकड़ न सके। उनका पकड़ा जाना तो दूर था, बहुतेरे उनके द्वारा मारे गये। सेनापति फरीदखांने चौंद दुर्गका घेरा करके आशा की थी कि अबकी बार प्रतापसिंह पकड़ गये, पर शीघ्रही वह आशा निराशासे बदल गई। फरीदखांकी चतुराई और उसका सैनिक बल सभी बातें व्यर्थ हुईं। एकबार प्रतापसिंहने फरीदखांकी सेनाओंको पहाड़ोंमें बन्द करके एकदम नष्ट कर डाला। इस तरह यह युद्धनिपुण मुसलमान वीर मारा गया; पर प्रतापसिंह पकड़े नहीं जा सके। धीरे धीरे शत्रुपक्षवाले निरुत्साह और निस्तेज होने लगे। इसके ऊपर घोर वर्षाके कारण सब पहाड़ी रास्ते दुर्गम हो गये और पहाड़ी जलाशयोंसे एक प्रकारकी जहरीली भाप निकलकर चारों ओर फैल गई। इन कारणोंसे शत्रुओंको कुछ दिनोंके लिये अपना उद्योग रोकना पड़ा। हरसाल बरसातके दिनोंमें प्रतापसिंहको इसी भांति विश्राम करनेका मौका मिल जाता।

इसी भांति वर्षपर वर्ष बीतता गया; संसारिक बातोंमें अनेक परिवर्त्तन अनेक विप्लव हुए; तौभी प्रतापसिंह अकबरके वशमें नहीं हुए। परन्तु समय बीतनेके साथ प्रतापके अधीनके स्थान एक एक करके शत्रुओंके अधीन होते गये और उनका दुःख बढ़ता गया। यदि इस समय प्रतापसिंहको किसी बातकी चिन्ता थी तो केवल अपने परिवारके लोगोंकी। अपने लिये उनको डर नहीं था; केवल यही आशङ्का थी कि यदि स्त्री बच्चे शत्रुओंके हाथोंमें पड़ जायँगे तो पवित्र सीसोदीयकुल कलङ्कित होगा। यह आशङ्का झूठी नहीं थी; क्योंकि अनेक बार उनके परिवारवाले शत्रुओंके हाथोंमें जाते जाते बच गये थे। एक समय शत्रुओंने करीब करीब उनको पकड़ही लिया था, परन्तु गिह्लोट कुलके सदाके मित्र विश्वासी

भीलोंने बचा लिया। उस बार जावानिवासी भीलोंने उनके परिवारके लोगोंको बांसकी टोकरियोंमें रखकर जावराकी टिनकी खानिमें छिपाया था। हितकारी भील आप भूखे रह जाते पर उनके भोजनका प्रबन्ध कर देते और रात दिन उन-की रक्षा करनेके लिये तैयार रहते। उनके उपकारोंका परिचय अबतक पाया जाता है। अबतक जावरा और चौंदके घने जंगलोंके बड़े बड़े वृक्षोंमें लोहेके अ-संख्य कड़े और कील लगे देख पड़ते हैं। उन कड़ों और कीलोंमें बेतको टोक-रियां लटकाकर विश्वासी भील लोग राजपूतोंको उनमें रखते जिसमें कि शेर आदि खूंखार जंगली जन्तुओंसे उनकी रक्षा हो। प्रतापके बचे बेतके बने इन्हीं झूलोंपर रहते, सीधे सादे वस्त्र पहनते और फलमूल खाकर निर्वाह करते। सुन्दर महलों और खूब अच्छे राजसी ठाठबाटसे जिनकी तृप्ति न होती वे वृक्षोंके ऊपर बेतकी टोकरियोंमें अनाथोंकी तरह रहते और जंगली फल फूल खाकर अपनी भूख मिटाते—यह देखकर भी प्रतापका उत्साह कम न होता! ऐसी कठोर विपत्तिके समय भी उनका साहस और उद्यम अटल रहा।

वीरवर प्रतापसिंहके इस अदम्य साहस, धीरता, सहनशीलता और उद्यमकी खबर अकबरके कानोंतक पहुंची। उनको बड़ा आश्चर्य हुआ और वह प्रतापकी प्रशंसा करने लगा। तौभी यह निश्चय करनेके लिये कि ये बातें सच हैं या झूठ उसने प्रतापके यहां अपना एक दूत भेजा। दूतने वहां जाकर दूरसे छिपे छिपे देखा कि प्रतापसिंह एक बड़े पेड़के नीचे पत्तोंके आसन पर बैठे भोजन कर रहे हैं और योग्य व्यक्तियोंमें आनन्दपूर्वक 'दूना' (राजाका [अपना] प्रसाद) बांटते जाते हैं। यद्यपि वह प्रसाद बहुत साधारण केवल जंगली फल इत्यादि है, तौभी अनुगृहीत सरदार लोग उसे पाकर अपनेको कृतार्थ मान रहे हैं। जिस समय प्रताप महलोंमें रहते थे और उत्तमोत्तम भोजनके बाद सरदारोंको "दूना' देते थे उस समय सरदार लोग जिस आनन्द और उत्साहसे प्रसाद लेते थे इस अवस्थामें भी वे उसी आनन्द और व्यग्रतासे ले रहे हैं—बादशाहके जासूसने दरबारमें लौट-कर सबके सामने पूरा पूरा हाल कहा। यह वृत्तान्त सुनकर सबके हृदय भक्तिसे भर गये और सब प्रतापकी योग्यताकी हजार मुखसे प्रशंसा करने लगे। यहांतक कि जिन राजपूतोंने अकबरका पक्ष लिया था वे भी प्रतापके गुणोंका बखान किये

बिना न रह सके। भट्टग्रन्थोंमें लिखा है कि अकबरका प्रधान सामन्त खानखानां प्रतापके आहात्म्य पर इतना मोहित हुआ कि उनके गुणोंसे उत्तेजित हो उसने उनकी बड़ी प्रशंसा की जिसका आशय यह है—"इस संसारमें सब अनित्य है; सब अस्थिर है; राज्यादि सबका नाश हो जायगा, पर एक महापुरुषकी कीर्त्ति सदा वर्त्तमान रहेगी। प्रतापने राज्य इत्यादि सब प्रकारका सुख छोड़ा, पर किसीके आगे सिर नहीं झुकाया। भारतवर्षके सब राजाओंमें केवल वेही पवित्र क्षत्रिय कुलकी रक्षा कर सके हैं *।"

अनेक प्रकारके कष्ट उठाकर, भूखे प्यासे रहकर, अनेक अवसरों पर बिना पलक बन्द किये रात बिताकर भी वीरवर प्रताप अपने व्रत पर अटल रहे; जरा भी नहीं घबराये। पर जो उनको उनके प्राणोंसे भी अधिक प्यारे थे, जिनका सम्मान और जिनकी प्रतिष्ठा बचाये रखनेके लिये वे लाख उपद्रवोंका सामना कर सकते थे, उनका असीम कष्ट और उनकी घोर दुर्दशा देखकर कभी कभी वे बिलकुल पागलके समान हो जाते। स्त्री पर्वतोंमें कहीं पड़ी है; बच्चे कहीं जंगली फल मूल पर गुजारा कर रहे हैं; कभी कभी उनको वह भी मयस्सर नहीं होता था, या मिलने पर भी वे भोजन करनेका समय नहीं पाते थे। क्योंकि निठुर और पत्थर जैसे कठोर हृदयवाले शत्रु इस भांति सदा उनकी खोजमें लगी रहते थे कि एक एक दिन पांच पांच बार आहार तैयार होनेपर भी समय न मिलनेके कारण उनको भोजन किये बिना ही उठ जाना पड़ता था। एक दिनकी बात है; शत्रुओंसे कुछ समयके लिये छुटकारा पाकर प्रताप परिवारके सहित एक घने जंगलमें थकावट मिटा रहे थे; उनकी रानी और पुत्रवधू दोनों एक ओर बैठी एक प्रकार की जंगली घासकी † रोटियां तैयार कर रही थीं; रोटियां बनाकर उनमेंसे आधी उन्होंने उपस्थित बालक बालिकाओंको बांट दीं और बाकी दूसरे समयके लिये रख छोड़ीं; पासही प्रताप घास पर लेटे अपने दुर्भाग्य और भारतके भविष्यके विषयमें विचार कर रहे थे; इतनेमें उनकी कन्या बड़े जोरसे चिल्ला

---

* सुप्रसिद्ध बैरमखांके पुत्र मिरजाखांको "खानखानां" की उपाधि मिली थी। यह उपाधि बड़े ऊँचे पदका परिचय देती है।

† इस घासका नाम "मोल" था।

उठी जिससे वे चौंककर उठ बैठे। बालिकाओंकी ओर दृष्टि फेरतेही उनको जो दृश्य दिखाई दिया उससे उनका हृदय फटने लगा! उन्होंने देखा कि एक बनबिलाव बालिकाके हाथसे रोटी छीनकर भागा जाता है और वह रो रही है। प्रतापका सिर चकराने लगा;—मानों उनके चारों ओर अन्धकार था। इससे पहले उनके हृदयमें अचल और अटल साहस था; परन्तु यह दृश्य देखते ही उनके चित्त पर बहुत बुरा असर पड़ा। लड़ाईके मैदानमें देशके लिये अपने प्यारे पुत्रों और भाई बन्धुओंको लड़कर मरते अपनी आंखोंसे देखकर भी वे दुःखित नहीं हुए थे; क्योंकि उस समय उन्होंने सोचा था कि जिस कर्त्तव्यका पालन करनेके लिये उन्होंने इस संसारमें जन्म लिया था उसे पूरा कर वे स्वर्गको सिधारे;—अतएव इसमें दुःख किस बातका? परन्तु आज भोजनके बिना प्यारी पुत्रीको रोते देखकर वीरहृदय प्रताप बड़ेही अधीर हुए। पागलकी भांति वे बोल उठे—"ऐसे राजसम्मानको धिक्कार है जिसके लिये ऐसी ऐसी विपत्तियां झेलनी पड़ें।" थोड़ी देरके बाद उन्होंने अकबरके पास सब हाल कहला भेजा और इन विपत्तियोंको टालनेके लिये लिखा।

प्रतापका पत्र पाकर अकबर बहुत ही प्रसन्न हुआ और आज्ञा दी कि राज्य भरमें नाच गाने हों तथा आनन्द मङ्गल मनाया जावे। घर घरमें नृत्य गान होने लगे। बादशाही खान्दानके लोग आनन्दमें मस्त हो गये; देहली नगरीके प्रत्येक मकानमें आनन्दध्वनि ध्वनित होने लगी। मारे हर्षके अकबरने पृथ्वीराज नामक एक राजपूतको प्रतापका वह पत्र दिखलाया। पृथ्वीराज उसके यहां कैद थे,—वे बीकानेर-नरेशके छोटे भाई थे। जिस वर्ष (संवत् १५१५) में राठौर वीर योध रावने मन्दोर छोड़कर अपने बसाये योधपुर नगरको राजधानी बनाया, उसी वर्ष उनके पुत्र बीकाने भारतकी मरुभूमिमें अपने नाम पर बीकानेर राज्य स्थापित किया। बीकाके वंशधरोंके उद्योगसे थोड़ेही दिनोंमें बीकानेर राज्यकी बड़ी उन्नति हो गई। वहांके राजा रायसिंहने मालदेवका अनुकरण किया। पृथ्वीराज इसी रायसिंहके भाई थे। दुर्भाग्यसे वे मुगलोंके यहां कैद हो गये थे; पर बड़े वीर साहसी और स्वदेशप्रेमी थे। केवल वीर ही नहीं,—वे एक अच्छे कवि भी थे। अपनी कवित्वशक्तिसे मनुष्यके हृदयको वे विमोहित कर सकते थे और आवश्य

कता पड़ने पर तलवार लेकर युद्धमें सहायता पहुंचा सकते थे। संक्षेप यह कि अपने समयमें वे राजस्थानके बड़े ऊंचे दर्जेके वीरों और कवियोंमेंसे थे। सरस्वती की कृपासे राजपूतानेके सब भट्टकवियोंपर उन्होंने विजय पाई थी। लड़कपनसे ही प्रतापके वीरत्व महत्व और उदारतासे उत्साहित होकर वे उनपर बड़ी श्रद्धा रखते थे। इस समय यह सुनकर उनको बहुत ही दुःख हुआ कि प्रतापने सन्धिके लिये अकबरको लिखा है। उनके मनमें बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई। उनको विश्वास नहीं हुआ कि स्वयं प्रतापने यह पत्र लिखा है। अपने स्वाभाविक सीधेपन और निडर भावसे उन्होंने अकबरसे कहा—'मैं प्रतापको भली भांति जानता हूं; यह पत्र उनका नहीं है। और तो क्या, यदि आप अपना ताज भी दे दें तौभी तेजस्वी प्रताप आपके वशमें नहीं होनेके।" इसके बाद उन्होंने अकबरसे अनुमति लेकर प्रतापसिंहको पास एक चिट्ठी भेजी। उस चिट्ठीसे मालूम होता था कि पृथ्वीराजने उनसे अपनी कमजोरी स्वीकार करनेका कारण पूछा, पर उनका एक और मत लब था। असलमें पृथ्वीराजने प्रतापसिंहसे अनुरोध किया था कि आप ऐसी अप्रतिष्ठाका काम न कीजिये। उस कविताको कभी कभी अब भी राजपूत लोग बड़े आनन्दसे पढ़ते हैं। उसका आशय नीचे लिखा जाता है §।

---

§ पृथ्वीराजजीके पत्रकी मूल प्रति पूरी पूरी कहीं नहीं मिलती। कुछ दोहे और सोरठे दो पुस्तकोंमें मिलते हैं, अर्थात् कुंवर हनुमन्तसिंहजी व ठाकुर पूर्णसिंहजी लिखित 'मेवाड़के इतिहास (पृष्ठ १७२) में और श्रीयुत बाबू राधाकृष्णदास-लिखित 'महाराणा प्रतापसिंह' नाटककी पाद-टिप्पणी (पृष्ठ १०६) में। दोनोंमें कुछ पाठान्तर जान पड़ता है। पहले ग्रन्थके कर्त्ताओंको ये सोरठे और दोहे कुनाड़ीके श्रीमान् राजविजयसिंहजीसे मिले और स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदासजी को बांकीपुरके बाबू गोकर्णसिंहजीसे। बाबू राधाकृष्णदासजीने तो यहां तक लिखा है कि "खेदका विषय है कि पृथ्वीराजके पत्रकी मूल प्रति हमको प्राप्त न हो सकी। उदयपुरसे भी नैराश्यपूर्ण उत्तर मिला। बाबू गोकर्णसिंहजी द्वारा केवल आठ सोरठे और दोहे मिले।" हमको भी उक्त पत्रकी पूरी नकल न मिलनेका बहुत दुःख है, तथापि अभावमें जो अंश मिला उसीसे सन्तोष करके अपने पाठकों के लिये उसको यहां उद्धृत करते हैं,—

"हिन्दुओंकी सब आशाएँ हिन्दुओंही पर निर्भर करती हैं, तथापि राजाओं उनको परित्याग कर रहे हैं। परन्तु प्रताप न होते तो अकबर सबको बराबर कर देता; क्योंकि हमारे राजाओंने जातीय गौरव और हमारी स्त्रियोंने पवित्र

"अकबर समद अथाह, सूरापण भरियो सुजल।
मेवाड़ो तिणमाह, पोयण फूल प्रतापसी ॥ १ ॥
अकबिरिये इण बार, दागिलकी सारी दुणी।
अण दागिल असवार, रहियो राण प्रतापसी ॥२॥
अकबर घोर अँधार, ऊँघाणा हिन्दू अवर।
जागे जगदातार, पोहरे राण प्रतापसी ॥ ३ ॥
हिन्दूपति परताप, पत राखो हिन्दुआणरी।
सहो विपत् सन्ताप, सत्य सपथ करि आपणी ॥४॥
चौथो चीतोड़ाह, बांटो बाजन्ती तणूं।
दीसे मेवाड़ाह, तो सिर राण प्रतापसी ॥ ५ ॥
चम्पो चीतोड़ाह, पोरस तणू प्रतापसी।
सौरभ अकबरशाह, अलियल आभड़िया नहीं ॥६॥
पातल खाग प्रमाण, सांची सांगा हर तणी।
रही सदा लग राण, अकबरसूं ऊभी अणी ॥ ७ ॥
माई जण अहड़ा जणे, जहड़ा राण प्रताप।
अकबर सूतो औझके, जाण सिराणे सांप ॥ ८ ॥
राखो अकबरियाह, तेज तिहारो तुरकड़ा।
नम नम नीसरियाह, राण बिना सहरावजी ॥९॥
सह गावड़िये साथ, येकण बाड़े बाड़िया।
राण न मानो नाथ, तांडे राण प्रतापसी ॥ १० ॥
सोयो सो संसार, असुर पलो ले ऊपरे।
जागे जगदातार, पोहरे राण प्रतापसी ॥ ११ ॥
धर बांकी दिन पाधरा, मरदन मूके माण।
घणां नरिन्दा घेरिया, रहे गिरन्दा राण ॥ १२ ॥"

समान खो दिया है। अकबर राजपूत जातिरूपी लम्बे चौड़े बाजारका दलाल है। केवल उदयसिंहके पुत्र (प्रताप) का मूल्य वह नहीं दे सकता। सच्चा राजपूत होकर नौरोजके लिये कौन अपना जातीय मान मिटा सकता है? तथापि कितनोंने ऐसा किया है? क्षत्रियोंकी सबसे प्रधान चीजें बिक गई हैं तो क्या चित्तौड़ भी इसी बाजारमें आवेगा? प्रतापने राज्य, धन, सुख, सब कुछ छोड़ा; परन्तु यह अमूल्य धन अबतक नहीं त्यागा। अनेक निरुपाय और निरवलम्ब होके इस बाजारमें आकर अपना अपमान अपनी आंखोंसे देख रहे हैं; परन्तु केवल हम्मीरके वंशधर कलङ्कित होनेसे अबतक बचे हुए हैं। संसार पूछता है कि प्रताप को कहांसे यह गूढ़ सहायता मिल रही है? अपनी तलवार और उत्साहके सिवा दूसरी कोई सहायता नहीं। इन्हीं दोनों चीजोंके द्वारा वे अबतक क्षत्रियोंका गौरव पूरी तरह बचा सके हैं। मनुष्योंके बाजारका खरीदार कुछ अमर होकर नहीं आया है, एक दिन इस संसारसे उसे बिदा होना पड़ेगा। तब हमारे वंशके गौरव की रक्षाका भार प्रताप पर पड़ेगा। जिसमें कि जातीय मान रहे और इसकी पवित्रता प्रकाशित हो, इसके लिये सब लोग (बड़ी आशासे) प्रतापकी ओर देख रहे हैं।"

राठौड़वीर पृथ्वीराजकी तेजस्विनी कविता पढ़कर प्रतापसिंहको बड़ा उत्साह हुआ; उनको जान पड़ा कि मानों दस सहस्र राजपूत वीरोंने आकर उनसे कहा कि हम आपकी सहायता करनेको तैयार हैं। उस कविताके प्रभावसे उनका सूखा हृदय नवीन उत्साह और बलसे भरा हो गया। नये सिरेसे वे अपनी प्रतिज्ञा पर अटल हुए। जब प्रत्येक हिन्दूकी दृष्टि स्वदेशोद्धारके लिये उन्हींकी ओर थी, तब वे निश्चिन्त कैसे रह सकते थे?

"सच्चा राजपूत होकर 'नौरोज' के लिये कौन अपना जातीय मान मिटा सकता है?" इस वाक्यमें 'नौरोज' शब्द आया है; इस शब्दका गूढ़ अर्थ इस जगह लिख देना आवश्यक जान पड़ता है। सूर्य जिस समय मेषराशिमें प्रवेश करता है उस समय पूर्वदेशके मुसलमानोंमें 'नौरोज' (नये वर्षका दिन) नामक महोत्सव होता है; परन्तु पृथ्वीराजने अपने पत्रमें इस अर्थसे यह शब्द नहीं लिखा था। अबुलफजलके इतिहाससे इस शब्दका गूढ़ अर्थ प्रकट होता है।

इस नौरोजका मतलब नये वर्षका नया दिन नहीं है; किन्तु यह एक दूसरे महोत्सवका नाम है। अकबरने इसका प्रचार किया था और अपनी इच्छासे इस का नाम 'खुशरोज' (आनन्दका दिन) रखा था। हर महीनेके नवें दिन यह उत्सव होता। उस दिन मुगलराज्य भरमें सब लोग आनन्दमें डूबे रहते। दुःख वा चिन्ताकी छायातक किसीके मुखपर दिखाई न देती। उस दिन राजसभामें सब तरहके लोग उपस्थित रहते। बेगमोंका भी बड़ा धूमधामका दरबार लगता: इस दरबारमें प्रतिष्ठित मुसलमानों और राजपूतोंकी स्त्रियां जातीं। पर यह 'खुशरोज' और एक बातके लिये विशेष प्रसिद्ध था। इस अवसर पर राजमहलके अन्दर किसी पर्देदार स्थानमें एक मेला लगता। वह मेला केवल स्त्रियोंका होता, पुरुष वहां जाने न पाते। राजपूत और मुसलमान व्यापारियोंकी स्त्रियां अनेक प्रकारकी कारीगरीकी चीजें उस गुप्त बाजारमें लेजाकर बेचतीं * और बादशाही खान्दान की औरतें उन चीजोंको खरीदती। "बादशाह वहां स्वयं बनावटी भेष बनाकर

* बादशाही खान्दानकी स्त्रिया और पुरुष भी जो चीजें बनाते, उनको इस राजप्रदर्शनीमें भेजते और उनकी बिक्रीसे उनको बहुत रुपये मिलते। बहुतोंको यह बात मालूम नहीं है कि एशियाके अधिकांश नरेश कोई न कोई व्यापार करते थे; दृष्टान्तके लिये यहां दोके विषयमें लिखा जाता है। औरङ्गजेब टोपियां बनाकर नौरोजके मेलोंमें बेचा करता था। इस व्यवसायसे उसने इतना धन इकट्ठा कर लिया था कि उसी धनसे उसके मरनेके बाद उसकी अन्त्येष्टि क्रियाका सब खर्च चल गया। इसी तरह महमूद खिलजी भी एक व्यापार करता था। कहा जाता है कि वह साहित्यव्यवसायी था, उसके अक्षर बहुत सुन्दर होते थे। एक दिन वह अपने दरबारियोंमें बैठा फारसीकी एक काव्यपुस्तककी नकल उतार रहा था। इतनेमें एक मुल्लाने उस पुस्तकके एक शेरका संशोधन करके उसकी जगह अपने बनाये चरणके रख देनेका अनुरोध किया। बादशाहने ऐसा ही किया; पर जब मुल्ला चला गया तब उसने उस चरणको मिटाकर उसकी जगह पहला चरण रखा। एक अमीरने ऐसा करनेका कारण पूछा, तो उसने इस आशयका उत्तर दिया कि एक वृथा विद्याभिमानी व्यक्तिका जी तोड़नेकी अपेक्षा लेख पर रोशनाई फेर देना अधिक उत्तम है।

घूमता। इस अवसर पर वह बिक्रीकी चीजोंका ठीक मूल्य मालूम कर लेता और यह भी सुन लेता कि राज्यकी क्या अवस्था है तथा राजकर्मचारियोंके विषयमें सर्वसाधारणकी क्या राय है।"—यह अबुलफजलके लेखका सारांश है। अबुलफजल ने इस मेलेके असल उद्देश्यको अपने इतिहासमें छिपानेकी चेष्टा की है; पर वास्तविक बात क्या छिप सकती है? समयके प्रभावसे सत्यकी रोशनी आपसे आप फैल गई। क्या अकबर सब भाषाएँ जानता था? खैर, इसे भी जाने दीजिये, पर बेपर्दी मुसल्मानी और हिन्दू स्त्रियां अपनी या मिली जुली बोलियोंमें जो बातें करतीं उनको क्या अकबर समझ सकता? कौन बुद्धिमान् आदमी अबुलफजलकी ऊपर लिखी बातका विश्वास कर सकता है? भाटोंके काव्यग्रन्थोंमें स्पष्ट लिखा हुआ है इस पापमय नवें दिनके उत्सव पर कितनीही दुर्भागिनियोंका पवित्र सतीत्व नष्ट किया जाता था! राठौरवीर पृथ्वीराजने इसी 'नौरोज' और इसके गन्दे उद्देश्यका अपने पद्यमें इशारा किया था।

जिस अकबरको 'जगद्गुरु' आदि उच्चसम्मानसूचक उपनाम मिले थे, मुसलमान इतिहासलेखकोंने अपने ग्रन्थोंमें जिसको सत्यवादी धर्म्मनिष्ठ और साफ हृदयवाला लिखकर खूबही सराहा है, क्या वही प्रसिद्ध अकबर अपना बड़प्पन इस प्रकार बिगाड़ता था? क्या यह सच है? जब यह विचार करते हैं कि अपने दुर्भाग्यसे जिन राजपूतोंने अपनी स्वाधीनता उसके हाथों बेच दी थी बादशाहका जो धर्म्म और कर्त्तव्य है उसकी ओर ध्यान न देकर उन्हींकी प्राणप्रियापत्नियोंके पवित्र पातिव्रतधर्म्मपर पदाघात करनेका वह प्रयत्न करता था तब उसे कपटी मतलबी विश्वासघाती कहनेकी इच्छा होती है और घृणाको हृदयमें स्थान मिलता है! कौन कह सकता है कि नौरोजके उत्सवोंपर कितनी कुलकामिनियां कलङ्क-कालिमासे कलुषित हो जाती थीं? बीकानेरके राजकुमार वीरवर पृथ्वीराज अपनी पत्नीके साहस और धर्म्मबलसे अपने कुलके कलङ्कित होनेसे बच गये। वह सीसोदीयकुलमें उत्पन्न हुई थी और वीरवर शक्तसिंहकी कन्या थी। जैसे अच्छे कुलमें उसका जन्म हुआ था वैसेही अच्छे गुण भी उसमें थे। उसके समान सर्वाङ्ग-सुन्दरी राजस्थानमें उस समय शायद ही कोई रही होगी। यह पृथ्वीराजका पुण्य था कि उनको ऐसी रूपवती गुणवती सती साध्वी मिली थी।

पृथ्वीराज अकबरके यहां कैद थे, सब प्रकार उसके हाथोंमें थे; पर कभी उन्होंने यह नहीं चाहा कि अकबर प्रसन्न होकर उनपर कृपा करे और न कभी उन्होंने उसकी अधीनता स्वीकार की। पत्नीके गुणोंसे उनके कैदके दिन भी बड़े आनन्द में बीतते थे। नीचे लिखा वृत्तान्त पढ़नेसे इस बातकी सत्यता मालूम होगी कि उनकी पत्नी उस समय राजस्थानकी एक सर्वाङ्गसुन्दरी और सर्वगुणसम्पन्ना स्त्री थी। इस वृत्तान्तसे उसकी धार्मिकता और सतीत्वका भी परिचय मिलेगा। एक दिन अकबर खुशरोजके आनन्दबाजारमें बनावटी सूरत बनाये घूम रहा था; इतने में पृथ्वीराजकी पत्नीपर उसकी दृष्टि पड़ी। उसकी अपूर्व सुन्दरता देखकर वह उसपर एकदम मोहित हो गया। निर्जीव मूर्त्तिकी तरह वह चुपचाप खड़ा खड़ा एकटक देरतक उसकी ओर देखता रहा। उसके मनमें पाप आया। आरामगाह में पहुंचकर वह अपने पाप-विचारके पूर्ण करनेका सुयोग ढूंढ़ने लगा। उसके चित्तमें ऐसी नीच बात पैठनेके दो कारण थे; प्रथम उसकी लालसाका पूरा होना द्वितीय मेवाड़के पवित्र कुलको कलङ्कित करना। इन्हीं दो रोंगटे खड़े करनेवाले कारणोंसे अकबर उस सुन्दरी राजपूत स्त्रीको अपने वशमें करनेका उद्योग करने लगा। जो रक्षक था वही भक्षक बनने चला;—जिसपर सुख दुःख धर्म्म अधर्म्म जीवन मरण निर्भर करता था वही निठुर जानवरोंसा आचरण करनेको तैयार हुआ;—जिसको लोग धर्म्मका अवतार मानते थे उसीने अधर्म्म करके गुनहगार बनना चाहा। फिर कौन उस पतिव्रताका धर्म्म बचाता? मेलेके बाद वह घर लौटने लगी। जिस रास्तेसे पहले जाया करती थी उधरहीसे आज भी चली। कुछ दूर जाते ही उसके चारों ओरके द्वार बन्द हो गये; बाहर निकलनेको कहीं रास्ता न मिला। उसे बड़ा आश्चर्य्य हुआ और क्रमशः मनमें अनेक प्रकारके सन्देह उत्पन्न हुए। इतनेमें सहसा एक ओरका एक द्वार खुला और अकबर सामनेसे आता दिखाई दिया। उस समय उसके सब अङ्गोंसे कामियों जैसे भाव झलकते थे। दोनों हाथ फैलाये हुए वह उसके सामने गया और अनेक तरहकी मीठी मीठी बातें कहके लालचमें फँसाना चाहा! अकबरको बातें सुनना था कि उस सतीके सिरसे पैरतक क्रोधकी बिजली दौड़ गई; तुरन्त बड़ी तेजीके साथ कमरसे कटार निकाल और अकबरको छाती पर उसे ले जाकर लाल लाल आंखें

निकाले हुए बोली,—"चोर, मुंहजोर निर्लज्ज! बोल, कसम खा कि कभी किसी राजपूतकुलको कलङ्कित करनेका विचार न करेगा। बोल बोल, नहीं तो यह कटार अभी तेरे कलेजेके पार होती है।" राजपूतसतीका अद्भुत साहस देखकर अकबर लज्जित और हैरान हुआ। उसकी पापप्रवृत्ति न मालूम कहां चली गई। उसके अज्ञानरूपी अन्धकारसे घिरे हुए हृदय पर प्रज्ञाका † प्रकाश पड़ा। उसे उसकी आज्ञा माननी ही पड़ी। भट्टग्रन्थोंमें लिखा है कि उस समय मेवाड़की अधिष्ठात्री भगवती विश्वमाता उस पाप-विलासभवनमें सिंहासन पर चढ़ी हुई सतीके सामने पहुँची थीं और सतीत्वरक्षाके लिये उन्होंने उस सतीके हृदयमें साहस और हाथमें कटार दी थी। इस राजपूतसतीके सुन्दर चरित्रका वर्णन भट्टकवियोंने बड़े बड़े मनोहर रूपकोंके साथ किया है। परन्तु पृथ्वीराजके बड़े भाई रायसिंह को ऐसी गुणवती स्त्री नहीं मिली थी। या तो पातिव्रत धर्म्म उसमें न होनेके कारण या डरके कारण वह अकबरके जालमें फंस गई; साधारण रत्नों और गहनों के बदलेमें उसने अपना पवित्र सतीत्व बेचा। जब वह लौटकर घर पहुंची तब पृथ्वीराजने उसके पति (अपने भाई) रायसिंहसे कठोर शब्दोंमें कहा—"सुन्दर रत्नोंको अपने पापी शरीरपर चमकाती और सोने चांदीके गहनोंको झमकाती हुई आपकी धर्मप्रिया पत्नी घर लौटी; पर भाई, क्या आपकी मूंछें अबतक वर्त्तमान हैं ‡?

महात्मा प्रतापसिंहके जीवनचरितकी आलोचना करते करते आवश्यकता समझकर हम दूसरे विषयके विचारमें लग गये थे, अब फिर सिलसिलेवार वृत्तान्त लिखना आरम्भ करते हैं। पृथ्वीराजकी जोश दिलानेवाली कविता पढ़कर उनको नया उत्साह हुआ और मुगलोंको उनके अत्याचारोंका बदला चखानेके लिये वे उद्योग करने लगे। उन्हें अब विनीत समझकर सब मुगल सेनापति अपने अपने स्थान में भांति भांतिसे हर्ष मनाने लगे थे; नाच गाने और आनन्दमें सब डूब गये थे। ऐसे समयमें प्रतापसिंहने अपने सैनिकोंके सहित सहसा उनपर आक्रमण किया। बहुतसे शत्रु मारे गये और बहुतेरे भाग गये; पर फिर भी कुछ फल नहीं हुआ।

† प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि।

‡ पृथ्वीराजके कहनेका यह मतलब था कि आपकी मूंछें मुड़ गईं अर्थात् आपकी इज्जत चली गई।

जहां हजार कटे वहां लाख उनकी जगह आ डटे ! धीरे धीरे संख्या बढ़ने लगी। प्रतापको पुनः उत्तेजित देखकर वे फिर उनको पकड़नेके लिये जंगल जंगल, पर्वत पर्वत, कन्दरा कन्दरा घूमने लगे; पर कोई उनका एक बालतक बांका न कर सका। वे अपने गुप्त निवासस्थानोंमें रहकर सुयोग और सुभीतेके अनुसार सामान्य सामान्य शत्रुसेनाओंपर आक्रमण करके उनका नाश करने लगे। इसी तरह बहुत दिन बीत गये; आधा पेट भोजन कर या बिलकुल भूखे रहकर—कभी पूरी नींद सोकर और कभी जागते हुए समय बिताकर—अनेक प्रकारके कष्ट सहते हुए वीरवर प्रतापसिंहने बहुत दिनोंतक मुसलमानोंसे लड़ाई की। क्रमशः उनके सहायक नष्ट हो गये। जङ्गली फल फूल, पेड़ोंके पत्ते, घास पात इत्यादि, जिन अभक्ष्य चीजोंसे अबतक गुजारा होता था वे भी अब समाप्त हो चलीं। अब वृक्षोंमें फल नहीं थे, घास पातका भी अभाव था। तब क्या करते ? ऐसी अवस्थामें अन्तमें एकदिन पशुओंकी मौत मरना पड़ता ? मौत आवे; उसकी परवा नहीं, न उसका दुःखही था; क्योंकि जो पैदा हुआ है वह अवश्यही मरेगा; परन्तु जिस स्वदेशके लिये—"स्वर्गादपि गरीयसी" मातृभूमिके लिये—उन्होंने इतनी लड़ाइयां लड़ीं, जन्मभूमिमें खूनकी धारा बहाई, उसकी क्या दशा होती ? जिस मतलबके लिये अपने राज्यको श्मशानसा करके वे बहुत दिनोंतक बनोंमें रहे वह क्या सफल हुआ ? उनकी अर्द्धाङ्गिनी दुःख कष्ट और चिन्तामें दुबली हो रही थी; फटे कपड़ों और रूखे बालोंवाली मानों अनाथा निस्सहाया और भिखारिनी बन रही थी. उनके प्यारे पुत्र और उनकी प्यारी पुत्रियां भूखों दीन हीन तथा निस्तेज हो रही थीं. ऐसी दुर्दशामें वे किस तरह जबर्दस्त मुगल सेनाके विरुद्ध लड़ सकते थे ? उनकी सब आशाएं गईं; सब तरहके भरोसे गये, अन्तमें स्वाधीनता लोप होनेके भी लक्षण दिखाई दिये। जिस स्वाधीनताके लिये वे असह्य क्लेश सहते आये, वही यदि चली जाती तब तो उनका सब उद्योग सब कष्ट व्यर्थ होता; बप्पारावलके पवित्र कुलको कलङ्क लगता; अतएव दूसरा उपाय न देखकर अन्तमें वीरवर प्रतापसिंहने स्वदेश छोड़कर सिन्धुनदके किनारे सोगदो राज्यमें जाकर अपना ऊँचा झण्डा गाड़नेका निश्चय किया। यात्राकी सब तैयारियां की गईं। जो विश्वस्त और अनुरक्त सरदार अबतक उनके साथ बराबर

दुःख और कष्ट उठाते आये थे, वे इस समय भी उनके साथ जानेको तैयार हुए। प्रताप उन्हीं छोड़के प्यारे सरदारों और स्त्री पुत्रोंको लिये शोकसमुद्रमें डूबे हुए अरावलीकी ऊँची चोटी पर चढ़े। वहां जाकर एकबार उन्होंने प्राणोंसे भी अधिक प्यारे चित्तौड़ नगरकी ओर जी भरके देखा। उस समय उनके शोकार्त हृदयमें कितनी चिन्ताएं कितनी भावनाएँ हुईं। उन्होंने सोचा कि अब इस जन्ममें कदाचित् मेवाड़भूमिका उद्धार न कर सकेंगे; कदाचित् पवित्र मेवाड़क्षेत्रसे शत्रु दूर न हो सकेंगे। इसी तरहकी बातें सोचते सोचते प्रतापसिंह बहुतही दुःखित हुए। पर ईश्वरकी अपूर्व इच्छाके अनुसार उनकी सब चिन्ताएँ शीघ्र दूर हो गईं और उनका भाग्य चमका।

वीरवर प्रतापसिंहको मेवाड़भूमि छोड़नी नहीं पड़ी; अरावलीसे उतरकर वे मारवाड़की सीमामें पहुंचे, इतनेमें उनका विश्वासी मन्त्री भामशा बहुतसा धन लिये हुए उनकी सेवामें पहुंचा और वह धन उनको देने लगा। यह धन केवल उसीकी कमाईका नहीं था; उसके पूर्वज बहुत दिनोंसे मेवाड़का मन्त्रित्व करते आये थे; उन्हीं सभोंकी इकट्ठी की हुई यह सम्पत्ति थी। भामशाने वह सम्पत्ति अपने उपार्जित किये हुए धनके साथ प्रतापको दी। उस धनसे लगातार १२ वर्षों तक २५ हजार सैनिकोंका खर्च चल सकता था। इस असीम उपकारके लिये महात्मा भामशा मेवाड़का "उद्धारकर्त्ता" कहा जाता है। यह बड़ी सहायता पाकर प्रतापने अपने सैनिकों और सरदारोंको इकट्ठा किया और शीघ्रही अकबरके सेनापति शहबाजखां पर चढ़ाई की। उनको कुछ दिनोंतक बेकाम देखकर मुसलोंने समझा था कि वे मारवाड़की भाग रहे हैं; पर अब उनका भ्रम दूर हो गया। उस समय शहबाजखां देवीर नामक स्थानमें पड़ाव डाले हुए था और बिलकुल निश्चिन्त था; पर अब प्रतापके कारण उसकी शान्तिमें बाधा पड़ी। आखिर दोनों दलोंमें लड़ाई हुई। शहबाजखां हारा; उसके सैनिक भागे। वहां मुसलोंकी एक और सेना थी। प्रताप भागे हुए सैनिकोंका पीछा करते करते उस सेनातक पहुंचे और उसे भी उन्होंने नष्ट कर डाला। बहुत शीघ्र ये बातें चारो ओर फैल गईं। अकबरके सैनिक बहुत व्यस्त हुए और दलबल सहित प्रतापको कैद करनेका बन्दोबस्त करने लगे; परन्तु उनका प्रबन्ध होते न होते प्रतापने

कमलमीरके शत्रुओंपर आक्रमण किया और उनके सरदार अब्दुल्लाको सैन्यसमेत मार डाला। इसी प्रकार थोड़े ही समयके बीचमें उन्होंने ३२ छोटे छोटे दुर्ग अपने अधिकारमें किये। इन दुर्गोंमें जितने शत्रु थे सब इनके द्वारा मारे गये। संवत १५८६ (सन् १५३०) तक चित्तौड़ अजमेर और मण्डलगढ़ छोड़कर समग्र मेवाड़का उन्होंने पुनरुद्धार कर लिया। जो मानसिंह उनके बड़े शत्रु थे, जिनके कारण उनको अनेक कष्ट सहने पड़े थे, अपने हाथोंसे जिनका खून करनेके लिये एक बार उन्होंने अपने प्राणोंकी ममता त्याग दी थी, इसके बाद उनको उनके कामोंका फल चखानेका निश्चय किया और उनके आमेर राज्य पर आक्रमण कर के वहांके प्रधान वाणिज्यनगर मालपुरको दुर्दशा करते हुए वे अपने राज्यको लौट आये।

थोड़ेही दिनोंके बाद उदयपुर पर भी प्रतापसिंहका अधिकार हो गया। इस बारके उद्योगमें उनको अधिक कष्ट उठाना नहीं पड़ा, शत्रु बिना झगड़ा किये वह नगर छोड़कर चले गये। कहा जाता है कि उदयपुरके चारों ओरके स्थानों पर प्रतापका अधिकार हो जानेपर उस नगरके बचावका कोई उपाय न देखकर अकबरने उसे खाली कर दिया; परन्तु भट्टग्रन्थोंमें लिखा है कि प्रतापका साहस वीरत्व और उद्योग देखकर अकबरका मन पिघला और भक्तिमें डूबकर वह उनको अधिक कष्ट न दे सका।

अकबरने लड़ाई रोकी, पर क्या इससे प्रताप सुखी हो सकते थे? जो अकबर उनकी सुन्दर मेवाड़भूमिकी दुर्दशा कर और उनके भाईबन्धोंके हृदयोंके रक्तसे उसे सींचकर चला गया, उसे निष्कण्टक भावसे एक बड़े राज्यका शासन करते देखकर प्रताप क्योंकर सुखी और शान्त हो सकते थे? उनकी अकबरसे बदला लेनेकी प्यास नहीं बुझी; देशवैरीको उसके अत्याचारोंका उचित फल वे चखा नहीं सके। जिस मतलबसे उन्होंने राज्य, धन सुख सब कुछ छोड़ा, वह नहीं निकला। तब वे सुखी कैसे होते? लड़ाई झगड़ोंसे उनको शान्ति अवश्य मिली, पर उनके हृदयका बोझ शान्त नहीं हुआ। यदि स्वदेशोद्धारके लिये शत्रुओंसे सामना करनेमें प्रतापका बिलकुल जन्म भयङ्कर युद्ध करते बीतता तोभी वे न घबराते; परन्तु जिस शत्रुने इतने दिनोंतक उनको हर तरहका कष्ट पहुंचाया—जिसने २० सहस्र

राजपूत वीरोंके खूनसे मेवाड़की भूमि रंग दी – उसका युद्ध रोककर चुपचाप चला जाना प्रताप जैसे वीरको कैसे सहन हो सकता था ? उन्होंने जो बात सोची थी वह नहीं हुई अतएव वे मनमें बहुत दुःखित हुए। उनके मनकी आशा मनहीमें रही,—चित्तौड़का उद्धार नहीं हुआ। जो चित्तौड़ उनके पूर्वजोंकी निवासभूमि था जहां प्रायः सहस्र वर्षसे निष्कण्टक भावसे गिह्लोटकुल शासन करता आता था आज वही चित्तौड़ प्रतापसे अलग था। उसके बारेमें वे अपरिचित थे। हजारों बिच्छूओंके डङ्क मारनेसे जितना कष्ट नहीं हो सकता उससे अधिक कष्ट इस चिन्तासे प्रतापको हो रहा था। वे बहुत ही अस्थिर हुए;—संसार उनको अंधियारा दिखने लगा। अकबर प्रतापके वीरत्व और महत्व पर विमोहित हो उनको छोड़कर चला गया और समझा कि इससे वे सुखी होंगे, पर यह वह नहीं जानता था कि प्रताप जैसे वीर पुरुषोंका शत्रुके कृपा करनेसे प्रसन्न होना तो दूर है बल्कि ऐसी बातोंसे उनके सिरसे पांवोंतक आगसी लग जाती है। शत्रु जितनी ही अधिक कृपा करता है वीरोंके हृदयोंको उतनी ही अधिक चोट पहुंचती हैं। यदि अकबर जन्मभर प्रतापको सताया करता, यदि उनको सुलगती हुई आगसे भरे अन्धेरे कुंवेमें डाल देता, तोभी उनको इतना मानसिक दुःख न होता जितना अकबरके इस कृपा दिखानेसे हुआ। इसके लिये उन्होंने अकबरको बहुत धिक्कारा।

प्रताप मध्यम उमरको पहुंचे है,—युवावस्थाकी आशाएँ क्रमशः शान्त मूर्त्ति बनाकर इसी उमरमें उनके भविष्य बुढ़ापेकी सूचना देने लगीं। यह तो नहीं कह सकते कि दूसरोंके लिये यह उमर सुखकी हो सकती है या दुःखकी, परन्तु वीरवर प्रतापने इस अवस्थामें कोई सुख नहीं पाया। चिन्ता, क्लेश और सांसारिक दुःखोंने जवानीमें ही उनको वृद्ध बना दिया। उनके सभी अङ्गोंमें शस्त्रोंके घावोंके चिन्ह थे, हृदय चिन्तासे जल रहा था; शरीर सूख गया था। जिस आशामें पड़कर एक समय वे संसारके मैदानमें मस्त हाथीकी तरह दौड़ रहे थे, वह धीरे धीरे शान्त मूर्त्ति धारण करने लगी। वह आशा फलवती नहीं हुई, पर प्रताप उसे छोड़ नहीं सके। चित्तौड़का उद्धार नहीं हुआ,किन्तु उसके उद्धारकी आशा नहीं छुटी। चित्तौड़ उनके जीवनका प्राण था। उदयपुरकी पहाड़ियोंकी चोटियोंपर

खड़े होकर प्रायः वे चित्तौड़के ऊँचे स्तम्भोंको देखा करते । उनके विजयी पूर्वज अपनी औमल चित्तकी रीतिपर उन स्तम्भोंको बनवा गये थे; शत्रुओंसे उनका बचाव करनेमें कितने गिह्लोट वीरोंने अपने प्राण दिये थे; पर प्रतापने क्या किया? कठोर उद्योग करने और असह्य कष्ट भोगनेपर भी वे चित्तौड़पुरीका उद्धार न कर सके, यह चिन्ता रात दिन प्रवीण प्रतापके मनको दुखाया करती । जिस समय एक चित्तसे वे चित्तौड़की ऊँची ऊँची दीवारों और स्तम्भोंको देखते, उस समय उनके मनमें कितनीही भावनाएँ होतीं । सोचते सोचते कभी वे उन्मादित कभी उत्तेजित और कभी बड़ीग्लानिमें डूब जाते। आशा इसी प्रकार प्रतापके जीवनको अन्तिम दशाकी ओर खींच लिये जाती थी ।

भट्टग्रन्थोंमें एक दिनका वृत्तान्त यों लिखा है कि प्रतापसिंह पर्वतकी ऊँची चोटीपर चढ़े एकमनसे चुपचाप चित्तौड़के ऊँचे स्तम्भोंकी ओर देख रहे थे। सूर्य भगवान् दिन समाप्त करके धीरे धीरे पश्चिमकी ओर जा रहे थे। उनकी लाल किरणोंकी छाया बादलोंपर पड़कर अपूर्व शोभा दे रही थी और वह छाया चित्तौड़की ऊँची दीवारों, स्तम्भों तथा नीची भूमिपर पड़कर दृश्यको और भी सुन्दर बना रही थी। प्रतापकी दृष्टि चित्तौड़दुर्गकी दीवारों और स्तम्भोंकी ही ओर थी; पर वे प्रकृतिकी मनोहर शोभा नहीं देखते थे। उनकी दोनों आंखें खुली थीं; पर वे अपना काम नहीं करती थीं, मानों उन आंखोंमें रोशनी थीही नहीं । वे आंखें इस संसारको छोड़कर अन्तर्जगत्का एक लम्बा चौड़ा चित्र देख रही थीं । वह चित्र बहुतही विस्तृत और अनेक विचित्रताओंसे भरा हुआ था। बाह्यजगत् या इस संसारकी, जिसमें हमलोग रहते हैं, सीमा है, और ये दोनों दिखाऊ आंखें किसी रुकावट या पर्देके पार नहीं जा सकतीं, परन्तु हृदयकी आंखोंपर पर्दा कौन डाल सकता है? प्रतापकी बाहरी आंखें चित्तौड़की ओर थीं, पर भीतरी नेत्रोंसे वे असीम अन्तर्जगत्के भांति भांतिके चित्र और चरित्र देख रहे थे । उनको जान पड़ता था कि मानों युवक बप्पाने मौर्य्य नाम राजाका जड़ाऊ राजमुकुट उतारकर अपने सिरपर रखा और मेवाड़का राजचिन्ह उसके सिरके ऊपर शोभित हुआ । इसके बाद वीरवर समरसिंह मुसलमानोंसे भारतकी स्वाधीनता देवीका उद्धार करनेके लिये अस्त्रशस्त्रोंसे सुसज्जित हुए और स्वदेशके लिये लड़कर वीरवर

पृथ्वीराजके साथ पवित्र दृषद्वतीके किनारे सदाके लिये सो गये। इतनेमें नहीं मालूम कहांसे काले काले बादलोंने आकर चारों ओरसे चित्तौड़को घेर लिया;— फिर उस घनी मेघमालाको बिथराकर चित्तौड़की अधिष्ठात्री देवीकी दीप्तिमयी मूर्त्ति किलेकी ऊंची चोटीपर दिखाई दी; अकस्मात् बड़े जोरसे मेवाड़भूमि कांप उठी, उसी समय अपना रक्त बहाकर राणा लक्ष्मणसिंहके १२ पुत्रोंने चामुण्डा देवीका विकट खप्पर भरा। थोड़ी देरमें यह दृश्य और भी भयङ्कर हो गया! देवलसरदार बाघजी, वीर जयमल, पुत्त, उनकी वीरा माताएं और पुत्रियां, आदि बहुत लोग युद्धके मैदानमें दौड़े। सहसा चित्तौड़का यह नक्शा बदल गया; सहसा मोटे मोटे बादलोंने सिरसे पैरतक उसे ढक लिया। उन बादलोंको लाखों तीव्र बिजलियोंके रूपमें इधर उधर फेंककर घोर करुण शब्द करती हुई वहांकी अधिष्ठात्री देवी चली गईं। अन्धकार और भी बढ़ गया; देखते देखते निर्बल हृदयवाला उदयसिंह उस स्वाधीनताकी भूमिको छोड़कर दूर भागा;— चारों ओर रुलाई और हाहाकारके शब्द सुन पड़ने लगे;— मानों प्रलयका सामान उपस्थित था। इतनेमें आश्चर्य और दुःखसे प्रतापसिंहके रोंगटे सहसा खड़े हो गये, उनकी विकट चिन्ताकी गति रुकी; बाहरी ज्ञान फिर धीरे धीरे आया। इस बाहरी जगत्पर ध्यान पड़ते ही आश्चर्य और घबराहटके साथ उन्होंने इधर उधर देखा। देखा कि भगवान् सूर्य अस्त हो गये हैं, आकाशमें मेघ छाये हुए हैं, अंधियारी घिरी आती है और बड़े जोरसे हवा चल रही है। हवाके जोरसे चलनेसे जब बादल आपसमें रगड़ खाते हैं तब भयङ्कर कड़कड़ाहटके साथ बिजली निकलकर एक ओरसे दूसरी ओरको दौड़ जाती है। जागती हुई अवस्थाका यह भयानक स्वप्न जब समाप्त हो गया तब प्रताप अपने विषयमें सोचने लगे। एकबार उन्होंने अपनी उस समयकी अवस्था पर विचार किया; फिर नये सिरेसे उनपर चिन्ताका आक्रमण हुआ; फिर क्रोध और बदला लेनेका ख्याल हृदयमें पैठा। दांत पीस और दोनों हाथोंसे जोरसे अपने बालोंको खींचकर वे चिल्ला उठे। दुष्ट शत्रुओंने उनपर कृपा करके लड़ाईसे मुंह मोड़ा; क्या वीरहृदय प्रतापको यह बात अच्छी मालूम हो सकती थी? नहीं, कभी नहीं। शत्रुओंकी इस कृपाका ध्यान करनेसे उनके हृदयमें जो कष्ट होता, उसका दृष्टान्त किसीसे दिया नहीं जा स-

जाता। वीर प्रतापसिंह कांटोंकी सेजपर सदाके लिये सो सकते थे, पर ऐसी कृपा वे नहीं चाहते थे *।

उस दिन वीरवर प्रतापसिंहके हृदयको जो कड़ी चोट पहुँची उसका दर्द कोई दूर न कर सका। उससे उनका जी टूट गया। जो चित्त अनेक कष्ट सहने पर भी अबतक स्थिर था वह अब अस्थिर हुआ। फिर वे बहुत दिनोंतक इस संसारमें न रहे; थोड़े ही दिनों बाद अपने जीवनकी मध्यम अवस्थामें स्वर्गवासी हो गये। उनके अन्त समयका हाल पढ़कर बिना आंसू बहाये रहा नहीं जा सकता। जैसे वीरत्व और महत्वके साथ वे जीवित थे वैसे ही इस जगत्‌से विदा भी हुए। क्षत्रियोंके गौरव और माहात्म्यके वे आदर्श थे। कोई भी राजपूत आज तक प्रतापकी तरह दुर्दशामें नहीं पड़ा; किसीको भी उनकी भांति असंख्य विघ्नों और विपत्तियोंका मुकाबला करना नहीं पड़ा; और किसीने स्वदेश तथा सजाति प्रेमका ऐसा परिचय नहीं दिया। इसीसे कहा कि प्रताप देवता थे; मनुष्योंमें देवता थे। इस हतभागिनी भारतभूमिको शत्रुओंके ग्राससे छुड़ानेके लिये—गिरी हुई अवस्थामें भी माननीया आर्यजातिके अद्भुत आत्मोत्सर्गका परिचय संसारको देनेके लिये—भारतवासियोंकी भलाईकी भविष्य जड़ बांधनेके लिये - वे इस संसारमें पैदा हुए थे; नहीं तो ऊंचे राजकुलमें जन्म लेकर कौन ऐसा होगा जो जान बूझकर सब सुख सम्पत्ति छोड़ देगा? बहुत बड़े राज्यका मालिक होकर स्वदेशोद्धारके लिये निस्सहाय भिखारीकी तरह जङ्गल जङ्गल, कन्दरा कन्दरा, दुर्गम पर्वतों और जलते हुए रेगिस्तानोंमें, लगातार २५ वर्षों तक भटकता फिरेगा?

सुन्दर महलोंको त्यागकर वीरवर प्रतापने पिशोला सरोवरके किनारे कई झोपड़ियां † बनवाई थीं। वे और उनके सरदार जाड़े गर्मी तथा बरसात सब ऋतुओंमें इन्हीं झोपड़ियोंमें रहते। आज अपने जीवनके अन्तसमय भी प्रतापसिंह

* धन्य प्रतापसिंह! धन्य तुम्हारी प्रतिज्ञापर अटलता! अपने देश और अपनी वर्त्तमान अवस्थाको भूले हुए भारतवासी क्या इस वृत्तान्तसे कुछ शिक्षा लेंगे?।

† इस सुन्दर सरोवरके ऊपर उन झोपड़ियोंकी जगह अब सङ्गमरमरके बड़े बड़े महलात खड़े देख पड़ते हैं। अवश्यही ये मेवाड़की गिरी अवस्थाके समय बने होंगे। सो, उस अवस्थामें भी मेवाड़ धन धान्यसे भरा था।

इन्हींमेंसे एक साधारण झोपड़ीमें चारपाई पर पड़े कालकी कठोर आज्ञाको बाट देख रहे थे। उनके सुख दुःखके साथी विश्वस्त सरदार उनकी चारपाईके चारों ओर बड़ी उत्कण्ठाके साथ बैठे थे; सबकी दृष्टि उनके सुस्त और कमजोर चेहरेपर गड़ी रही थी। कब क्या हो जाय इसलिये सब लोग बड़ी सावधानीसे हाथ पांव हिलाना आदि उनके शरीरकी सब गति देख रहे थे। इतनेमें सिरसे पैरतक थर-थराकर लम्बी सांस खींचते हुए एकबार प्रतापने 'हाय' की। यह देखकर जो लोग वहां बैठे थे सबको हार्दिक दुःख हुआ; सबकी आंखोंसे आंसू निकल पड़े। सालुम्ब्रा सरदारने धीमे स्वरमें पूछा—"क्यों,—क्यों महाराज! वह कौन ऐसा दुःख है जिसने आपकी पवित्र आत्माको कष्ट पहुंचाया,—इस अन्तिम नींदमें बाधा डाली?" कुछ ठहरकर प्रतापसिंह रुक रुककर बोले—"सरदारशिरोमणि, प्राण अब भी बाहर नहीं निकलते हैं; केवल एक धैर्यधरानेवाली बात सुननेसे ये मुखसे निकल जायँगे। वह धैर्य धरानेवाली बात आपही लोगोंके मुखसे सुनना चाहता हूं। आपलोग मेरे सामने कसम खायँ कि प्राण रहते मातृभूमिको कभी शत्रुओंके हाथोंमें आने न देंगे। बस, इतना ही कहिये, फिर मैं सुखसे आंखें बन्द कर लूंगा। मेरा पुत्र अमरसिंह मेरे पूर्वजोंके गौरव और मानकी रक्षा नहीं कर सकता; वह शत्रुओंके हाथोंसे मातृभूमिका उद्धार नहीं कर सकेगा। वह सुखका अभ्यस्त हो गया है; कष्ट उठानेकी सामर्थ्य उसमें नहीं है।" इतना कहनेके बाद प्रतापके मुखपर बड़ी गम्भीरता दिखाई दी और अमरसिंहके बाल्य-कालकी कई बातें उन्होंने कहीं। एक बार कुमार अमरसिंह इसी नीची झोपड़ी में प्रवेश कर रहे थे, उस समय उनकी पगड़ी द्वारसे लगकर भूमि पर गिर पड़ी। अमरसिंहको यह बात बहुत बुरी मालूम हुई; वे अभिमानके साथ लौट गये।—यह वृत्तान्त कहते कहते प्रतापका मुख और भी गम्भीर हो गया; फिर एक लम्बी सांस खींचकर वे बोले—"इन झोपड़ियोंकी जगह सुन्दर महल बनेंगे और अमर-सिंह मेवाड़की दुरवस्था भूलकर अनेक प्रकारके आनन्द विलासमें लग जायगा; इस कठोर व्रतका पालन वह न कर सकेगा। हाय! मातृभूमिके जिस गौरव और स्वाधीनताके लिये मैं लगातार २५ वर्षों तक जङ्गल जङ्गल पर्वत पर्वत भटकता फिरा, जिसके लिये मैंने सब प्रकारका सुख छोड़ा, अमरसिंह उसकी रक्षा नहीं

कर सकेगा। वह अपने सुखके लिये स्वाधीनताका गौरव त्याग देगा और आपलोग भी वैसा ही करके मेवाड़का शुभ्र यश कलङ्कित कर डालेंगे;—मुझे इसी बातका दुःख है।" प्रतापका वाक्य समाप्त होते ही सब सरदार एकस्वरसे बोल उठे—"महाराज, हमलोग बप्पारावलके पवित्र सिंहासन पर शपथ करते हैं कि जबतक हममेंसे एक भी जीवित रहेगा तबतक कोई मुसलमान मेवाड़पर अधिकार नहीं करने पावेगा, तबतक राजकुमारको महाराजकी आज्ञा टालनेका अवसर हम लोग नहीं देंगे—और जबतक मातृभूमि पुनः पूरी तरह स्वाधीन नहीं हो जायगी तबतक सब इन्हीं झोपड़ोंमें रहेंगे।" यह धैर्य धरानेवाली बात सुनकर प्रतापको शान्ति मिली, उनकी सब चिन्ता और यन्त्रणा दूर हुई और बड़े आनन्दके साथ शान्त चित्तसे वे स्वर्गको सिधारे।

उस दिन भारतके भाग्याकाशका एक अत्यन्त उज्ज्वल सितारा टूटा; सारी भारतभूमि मानों कांप उठी; हृदयको टुकड़े टुकड़े कर डालनेवाली हाहाकार-ध्वनि सुनाई देने लगी; कौन रोता है कौन नहीं यह किसीने नहीं देखा क्योंकि सभी रो रहे थे! स्त्री, पुरुष, बालक, युवा, वृद्ध, धनी, निर्धन सब स्वदेशप्रेमी संन्यासी प्रतापके लिये आंसू बहाने लगे। उस दुर्दिनको कितनेही वर्ष बीत गये हैं, संसारमें तबसे कितने परिवर्त्तन हुए हैं, भारतकी पवित्र छातीको कितने विदेशियोंने रौंदा है, अभागे भारतवासियोंको कितने कष्ट सहने पड़े हैं, पर कोई प्रतापका शोक आजतक भूल नहीं सका है और भूल भी नहीं सकेगा।

राजपूतकुलतिलक वीरश्रेष्ठ प्रतापसिंहका पवित्र जीवनचरित ध्यानसे पढ़ना सबका कर्त्तव्य है। जिनमे जातीयता है, जो अपने देश और जातिके लिये कभी दो बूंद आंसू बहाते हैं, जो जानते हैं कि जन्मभूमिका माहात्म्य कितना बड़ा है, वे वीर प्रतापसिंहकी जीवनी खूब विचारसे पढ़ें। नहीं कहा जा सकता कि प्रतापकी तरह महावीर इस संसारके दूसरे किसी देशमें भी कभी पैदा हुआ था या नहीं। जिस मुगल बादशाहने एक समय अपनी बड़ीभारी मददसे उस समय के सब राजाओंसे ऊँचा स्थान पाया था, जिसकी विशाल सेनाके आगे अरबसका सैन्यदल भी कुछ नहीं जान पड़ता, राजपूतवीर प्रतापसिंह थोड़ेसे सैनिकों और सरदारोंके साथ उसी जबर्दस्त अकबरशाहके मुकाबलेमें लगातार २५ वर्षों तक

रहे ! यदि मेवाड़में कोई थुसिडाइडस * या कोई जिनोफन † जन्म लेता, यदि कोई मेवाड़का पूरा पूरा सच्चा इतिहास लिख सकता, तो पिलोपोनिसस्के महासमरका हाल या "दस हजार" की दुर्दशाका हत्तान्त इस घटनाकी कभी बराबरी न कर सकता। कौन कह सकता है कि मेवाड़राज्यमें ऐसी कितनी घटनाएँ हो गई होंगी ? वीरवर प्रतापसिंहमें अदम्य वीरत्व और सच्चा स्वदेशानुराग था, इसीसे इतने लम्बे समयतक वे युद्ध कर सके और अकबर लाख उद्योग करने पर भी उनका मन न पलट सका। प्रतापकी पवित्र लड़ाईका स्थल "हल्दीघाट" है। इस लम्बे चौड़े पहाड़ी प्रान्तमें ऐसी कोई जगह नहीं जहां प्रतापके वीरत्वका गौरव प्रकट न होता हो। इस संसारमें जबतक वीरताका आदर रहेगा, जबतक

* थुसिडाइडस एक बहुत प्रसिद्ध ग्रीक इतिहासवेत्ता हो गया है। यह ईसामसीहके जन्मसे ४७१ वर्ष पहले ग्रीस देशके एथेन्स नगरमें पैदा हुआ था। एक समय यह ग्रीसकी सेनाका प्रधान अफ़सर नियत किया गया; पर जब सेना लड़ाईमें हारी तब राजदण्डके भयसे स्वदेश छोड़कर २० वर्षतक इसने अज्ञातवास किया। ईसामसीहसे ४०३ वर्ष पहले यह अपने देशको फिर लौटा। इसके थोड़े ही दिन बाद इसकी मृत्यु हुई। पिलोपोनिससकी प्रसिद्ध लड़ाईका प्रथम काण्ड इसीका रचा हुआ है।

† जिनोफन भी एक प्रसिद्ध ग्रीक इतिहासवेत्ता और सेनानायक था। यह विख्यात साक्रेटिसका शिष्य था। जिस समय ईरानी बादशाह साइरस अपने भाईके विरुद्ध लड़ने चला उस समय जो दस हजार ग्रीक सैनिक उसकी सहायताके लिये लड़ाईके मैदानमें गये थे जिनोफन भी उन्हींमेंसे एक था। लड़ाईमें साइरस अपने भाईके हाथों मारा गया; तब उसका विजयी भाई बड़ी निष्ठुरतासे ग्रीक-सैनिकोंको मारने लगा। ऐसे सङ्कटके समय जिनोफन बड़ी वीरता और चतुराई दिखाकर बचे हुए "दस हजार" सैनिकोंको बचाकर लड़ाईके मैदानसे निकाल ले गया। इसका जन्म एथेन्समें हुआ था, पर एथेन्सके साथ स्पार्टाका भयङ्कर झगड़ा होनेपर यह अपनी जन्मभूमिके ही विरुद्ध लड़ा। यह बहुतसे ग्रन्थ लिख गया है जिनमें "साइरसकी युद्धयात्रा," "साइरसका जीवनचरित," "साक्रेटिसकी जीवनी" आदि अधिक प्रसिद्ध हैं।

इतिहास जोकि बीती हुई बातोंका गवाह होता है इस गिरी हुई जातिके पिछले बड़प्पनकी कहानी प्रकट करता रहेगा, तबतक पवित्र हल्दीघाट थर्मोपोली ‡ और उसके अन्दरका देवीर क्षेत्र मारायन § कहा जाकर प्रशंसित होगा।

ग्यारहवां अध्याय।

अमरसिंहका सिंहासनारोहण;—राजा मानसिंहको विघ्न देनेके उद्योगमें व्यग्र अकबरकी मृत्यु;—अमरसिंहने पिताके आगे जो प्रतिज्ञा की थी उसका पालन करनेमें उनकी लापरवाई;—चालुक्य सरदारका आचरण;—अमरसिंहका बादशाही सेनाओंको हराना, सागरजीका चित्तौड़की गद्दी पाना;—नई नई जीत,—चूंडावतों और शक्तावतोंमें परस्पर कलह;—शक्तावतोंकी उत्पत्तिका हाल,—बादशाहका अपने पुत्र परवेजको राणाजीके विरुद्ध भेजना;—लड़ाईमें परवेजका पराजित होना;—महाबतखांका पराजय;—सुलतान खुसरोका मेवाड़पर आक्रमण करना;—अमरसिंहकी निराशा;—इङ्गलैण्डसे दूतका आना;—अमरसिंहका अपने पुत्रको राज्यकार्य सौंपना;—अमरसिंहका वनवास,—उनकी मृत्यु।

(१)

प्रतापसिंहके १७ पुत्र हुए थे; अमरसिंह उनमें सबसे बड़ा था, अतएव वही पिताके सिंहासनका अधिकारी हुआ। आठ वर्षकी उमरसे लेकर अपने पिताके स्वर्गवासके समयतक हर समय पिताके साथही रहकर अमरसिंहके दिन बीते थे। पिताके दुःख, कष्ट, विपत्, सङ्कट और कठोर परिश्रमके समय उनके साथ रहकर उसने उनके सुन्दर गुणोंका अनुकरण करनेका यत्न किया था और उसका यत्न

‡ थर्मोपोली ग्रीसदेशका एक तङ्ग पहाड़ी स्थल है। इसी जगह केवल थोड़ेसे वीरोंके साथ ग्रीसके अत्यन्त प्रसिद्ध महावीर लियोनिडसने ईसामसीहसे ४८० वर्ष पहले ईरानके बादशाह जरक्सको बहुत बड़ी सेनाका रास्ता रोका था।

§ मारायन ग्रीस राज्यके अन्तर्गत अटिका प्रदेशका एक छोटा गांव है। प्रसिद्ध ग्रीक वीर मिलटियेडसने ईसामसीहसे ४९० वर्ष पहले इसी जगह ईरानी सेनाओंको समूल नष्ट किया था।

सफल भी हुआ था। वीरवर प्रतापके वीर उदाहरणसे उत्साहित और उनका स-हृत्य समझकर अपनी युवावस्थाके मध्यमें * उसने मेवाड़राज्यके शासनका भार अपने ऊपर लिया;—सङ्कटमय संसार-समुद्रमें गोता लगाया। उस समयतक उसके कई पुत्र हो चुके थे जो यद्यपि छोटे थे पर बड़े बलवान् और तेजस्वी थे; और तो क्या राज्यकार्यमें भी वे इसी उमरमें बड़े चतुर और बुद्धिमान् हो गये थे।

प्रतापसिंहके स्वर्गवासके आठ वर्ष बाद उनका भयङ्कर प्रतिद्वन्द्वी अकबरशाह इस दुनियासे विदा हुआ। जिस आशासे अकबरने बड़ा खर्च बड़ा यत्न किया, अनगिनत लोगोंका खून बहाया, वह पूरी नहीं हुई; उसके सब उद्योग और यत्न व्यर्थ हुए; वीरवर प्रतापसिंहको वह किसी तरह वशमें न कर सका; अतएव अ-धिक उद्योग वृथा समझकर उसने इस कठोर कामसे हाथ खींचा। मेवाड़के अ-नन्त हुए रेगिस्तान श्मशानमें फिर शान्तिकी वर्षा हुई और ठण्ढक पहुँची। अक-बरके जीवनके अन्तिम समयमें अमरसिंहको पूरी शान्ति भोगनेका अवसर मिला। यदि वह चाहता तो इस शान्तिके मार्गमें कांटे पड़ सकते थे; पर ऐसा करना उसने उचित नहीं समझा, अर्थात् मुगल-साम्राज्यके विरुद्ध लड़ाई ठानकर शान्ति में बाधा नहीं डाली।

आधी शताब्दीसे अधिक कालतक अच्छे ढङ्गसे राज्यशासन करके अकबर इस संसारसे विदा हुआ। इस लम्बे समयमें सुन्दर राजनीतिके अनुसार अपने राज्यका पाया वह ऐसा दृढ़ कर गया कि वह बहुत दिनोंतक अटल रहकर उसकी चतुराई और शासनकुशलताका परिचय देता रहा। राजोचित गुणोंमें अपने समयके युरो-पीय नरेशोंसे वह किसी प्रकार कम नहीं था। फ्रान्सका राजा हेनरी चतुर्थ, स्पेनका अधिपति पांचवां चार्ल्स और इङ्गलैण्डकी परम प्रसिद्ध रानी एलिजावेथ— ये तीन उसके समसामयिक थे। रानी एलिजावेथने तो अकबरके साथ बन्धुत्व करनेके लिये उसके दरबारमें अपना एक दूत † भेजनेका निश्चय किया था।

* संवत् १६५३ वै० (सन् १५९७ ई०) में अमरसिंहका अभिषेक हुआ।

† सुविख्यात सर टामस मुनरो दूत बनकर आये थे। यद्यपि रानी एलिजा-बेथने उनकी भारतयात्राका सब बन्दोबस्त कर दिया था पर उसकी मृत्यु हो गई, अतएव उसके बाद सर जेम्स जब इङ्गलैण्डका बादशाह हुआ तब सर टामस भारतको चले।

ईश्वरकी कृपासे हेनरी या एलिजाबेथकी तरह इसे भी अच्छे मन्त्री मिल गये थे। प्रसिद्ध फरांसीसी राजमन्त्री सली जैसा धर्मनिष्ठ रणकुशल और राजनीतिज्ञ था, अकबरका मन्त्री बैरमखां भी वैसा ही वीर बुद्धिमान् और नीतिनिपुण था।—और वह यद्यपि बुद्धिमानोंमें अबुलफज़्लके बराबर था, पर धार्मिकता या उदारतामें नहीं। जिस मुगलसाम्राज्यके स्तम्भ अबुलफज़्ल और बैरम जैसे बहुदर्शी लोग ह उसकी शक्ति कितनी बड़ी हो सकती है यह बात पाठक स्वयं समझ सकते हैं। दुःखकी बात है कि मेवाड़के विरुद्ध चलकर उसकी दुर्दशा करनेमें अकबरने इस जबर्दस्त शक्तिसे काम लिया। इसमें सन्देह नहीं कि अकबरने मेवाड़की बुरी दशा की, पर उसमें जो गुण थे उनका वर्णन करना अपक्षपाती उदारहृदय भट्ट कवि भूले नहीं। प्रतापसिंहके साथ साथ उन्होंने अकबरकी भी प्रशंसा की है और उसके गुणोंको भी अपनी कवितामें प्रकट किया है। यह बात कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि अकबर राजनीतिज्ञ, समरकुशल, अनुभवी और दूरदर्शी था; पर उसकी उदारता और सरलताके विषयमें बहुत लोगोंको सन्देह है। बूंदीके भाटोंने उसके एक अन्तिम कार्यका जो हाल लिखा है उसे पढ़कर भयभीत, स्तम्भित और हैरान होना पड़ता है, बल्कि उसे कपटी, स्वार्थी और विश्वासघाती कहनेकी इच्छा होती है। जिस अकबरने अपने प्रचण्ड बलके प्रभावसे उस समयके सब भारतीय राजाओंसे ऊंचा स्थान पाया था, जिसकी सूक्ष्मदर्शिता सचाई और न्यायपरायणताकी बहुतसी बातें सुनी तथा पढ़ी जाती हैं; जिसे जगद्गुरु कहते थे, लिखते लेखनी रुकती है कि उसी अकबरने राजा मानसिंहको मारने जाकर अन्तमें अपनेही प्राणोंसे हाथ धोया! बूंदीके भाटोंने यह वृत्तान्त अपने काव्यग्रन्थोंमें बड़ी स्पष्टतासे लिखा है। टाड साहब लिखते हैं कि उनका वर्णन बिलकुल विश्वासके योग्य है। विशेषकर वे हर दिनकी घटनाओंका हाल अपने ग्रन्थोंमें लिख लिया करते थे। मुसलमान इतिहासलेखकोंकी तरह पक्षपात न करके वे अपने राजाओंकी बदनामीकी बातें भी लिख गये हैं। उनके काव्यग्रन्थोंमें लिखा है कि राजा मानसिंहका प्रताप निरन्तर इतना बढ़ता गया कि आखिर अकबरको उन्हें देखकर डाह होने लगी। डाहके कारण उसे ऐसा जान पड़ने लगा कि मानों मानसिंह उसे सिंहासनसे उतार देनेका उद्योग कर रहे हैं।

और धीरे डाहके बाद चिन्ता और चिन्ताके बाद आग्रह हुई और आग्रह करते करते अन्तमें उसे क्रोध आ गया। सो, वह राजा साहबको गुप्तरूपसे मारनेका यत्न करने लगा। भला क्रूरहृदय लोगों और दुराचारियोंको अपना मतलब निकालने के लिये उपायोंकी क्या कमी रहती है। अकबर बड़ा बलवान् था, मानसिंह उसके सामने कुछ नहीं थे, पर फिर भी उनको इस ढङ्गसे मारनेका उसने निश्चय किया जिस ढङ्गसे कोई कमजोर, डरपोक, नामर्द किसीको मारेगा; अर्थात एक दिन कुछ माजून तैयार करके उसका आधा हिस्सा जहर मिलाकर उसने मानसिंहके लिये रख दिया; पर धोखेमें वह जहर मिला हुआ हिस्सा ही स्वयं खा लिया। उसी समय पापका प्रायश्चित्त हो गया। जिसने उसका कोई अपराध नहीं किया था बल्कि उसके साथ उपकार किये थे, डाहके कारण उसे मारने जाकर वह आप मरा। अकबरने जिस कारणसे ऐसा अनुचित काम किया वह हमने लिख दिया। मान लिया जाय कि वह कारण सच्चा था, मान लिया जाय कि मानसिंह सच्चे उत्तराधिकारी सलीमके बदले अपने भांजे खुसरोको उसकी गद्दीपर बिठानेका यत्न कर रहे थे; पर ऐसी अवस्थामें भी अकबरको क्या ऐसी नामर्दीके काममें हाथ डालना उचित था? क्योंकि वह तो खुलाखुली उनको दण्ड दे सकता था; फिर न मालूम क्यों अपना गौरव भूलकर उसने इस ढंगसे मानसिंहकी हत्या करनी चाही ❋।

❋ अकबरने इस नीच उपायसे केवल मानसिंहको ही मारनेका विचार नहीं किया था; किन्तु वह प्राय: ऐसाही किया करता था कि जिस अमीर या दरबारी से मतभेद हो गुप्त रूपसे उसके प्राण लेता था। इस विषयमें गत १ ली मार्च (सन् १८०६) के लखनऊके अंगरेजी भाषाके प्रसिद्ध अर्द्धसाप्ताहिक पत्र "ऐडवोकेट" में निम्नलिखित नोट छपा है—

"Research in the history of our country has caught the fancy of many Indians The contributions of some are valuable indeed. Mr. R. P. Karkaria's paper on the death of the cosmopolitan Mohamedan Emperor (Akbar) before the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society is a learned disquisition. * * * Mr. Karkaria says in his essay: In Broecke's account Akbar's death is narrated, from which it appears, that the Emperor poisoned himself by mistake. He was, it seems, in

जब सभी आपको सर्वाधिकारी मानते हैं तब क्या केवल अमरसिंह आपके प्रतिद्वन्द्वी रहेंगे? क्या उनकी सेनाएं कभी आपके आगे ठहर सकती हैं? तब वे इतना गर्व और अहङ्कार क्यों कर रहे हैं? उनका घमण्ड अवश्य तोड़ना चाहिये। इत्यादि।

राणा अमरसिंहपर दुहरा सङ्कट पड़ा। एक ओर तो आनन्द और सुखका ध्यान उनको कठोर कर्त्तव्यपालनके मार्गसे हटानेका उद्योग कर रहा था और दूसरी ओर यश तथा मानकी चिन्ता उनके हृदयको थोड़ा थोड़ा उत्तेजित कर रही थी; पर दुःखकी बात है कि उनका हार्दिक उत्तेजन बहुत देर तक स्थिर न रहा। द्विविधामें पड़कर वे निश्चय न कर सके कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं। ऐसे समयमें कुछ छोटे जीके खुशामदी अनेक प्रकारका लालच दिखाकर उनको समझाने लगे कि, "महाराज, युद्ध करके क्या होगा? क्यों बेमतलब विपत्ति मोल लेते हैं? जब इस भारतवर्षके हिन्दू मुसलमान सभी अधिपतियोंने मुगल बादशाहके आगे पराजय माना है तब क्या आप समझते हैं कि उनके मुकाबलेमें ठहर सकेंगे? आपके पास इतनी सेना कहां हैं और खर्चके लिये रुपये कहां हैं? यदि बादशाहसे सन्धि करलेनेमें सब प्रकारसे रक्षा होती है तो ऐसा कर डालनेमें क्या हानि है? सन्धि करनेसे आपका राज्य गौरव सब कुछ बचा रहेगा; और इसके सिवा सम्भव है कि बादशाह सन्तुष्ट होकर आपका राज्याधिकार और बढ़ा दे।" ये कमजोर बातें सुनकर यद्यपि राणा अमरसिंह मनमें कुछ दुःखित हुए, पर वे इतने आलसी हो गये थे कि इच्छा होने पर भी कुछ कर न सके; अपना कर्त्तव्य भूलकर व्यर्थ समय बिताने लगे। उनको इस विमूढ़ और निरुत्साह अवस्थामें समय गँवाते देखकर मेवाड़के सरदारोंको बहुत दुःख हुआ। वे सब एकत्र होकर "अमरमहल" में पहुंचे और राणा अमरसिंहसे आई हुई विपत्तिसे छुटकारा पानेके लिये तैयार होनेका उन्होंने अनुरोध किया। सालुम्ब्रा सरदारने बड़े गम्भीर भावसे कहा,—"महाराज! क्या आप इसी तरह अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा करेंगे? पिताके आगे आपने जो वचन दिया है उसका पालन क्या इसी भांति होगा? वीरवर प्रतापसिंहके ज्येष्ठ पुत्र होकर क्या आप इसी प्रकार अपने पवित्र कुलका गौरव बिगाड़ेंगे? जरा विचारिये तो महाराज कि किस कुलमें आप उत्पन्न हुए हैं और किसका रक्त आपकी नसोंमें बह रहा है। देशके शत्रु आपके सामने खड़े हैं और आप झूठे खुशामदियोंके बीच बैठे डरपोक नि-

बैठे नामर्दोंकी तरह समय गँवा रहे हैं! आपकी आंखोंके सामने शत्रु आपके राज्यकी दुर्दशा करेंगे, आपकी प्रजाओंको दुःख देंगे, राजपूत-सतियोंका धर्म नष्ट करेंगे; भला प्राण रहते आप कैसे इन उपद्रवोंको सहन कर सकेंगे? धिक्कार है ऐसे सुखको! यदि बड़ोंका मान ही आप बचा नहीं सकते तो इस पवित्र सीसो-दीय कुलमें जन्म क्यों लिया?"

वीरवर सालुम्ब्रासरदारकी ये बातें सुनकर जो लोग वहां उपस्थित थे सबके हृदय उत्साहसे भर गये; परन्तु बड़े दुःखका विषय है कि राणा अमरसिंहको उससे जरा भी शिक्षा नहीं मिली! अतएव बड़े क्रोध और अभिमानसे सालुम्ब्रा-सरदारके सारे शरीरसे मानों आगकी चिनगारियां निकलने लगीं। सभागृहके सामने ही एक बहुत बड़ा और खूबसूरत विलायती आईना लगा था; क्रोधमें भरे हुए सरदारने और कुछ पास न पाकर गलीचेके कोर पर लगी हुई पीतलकी छड़को बड़े जोरसे खींचकर उसपर फेंका। देखते देखते वह आईना चकनाचूर हो गया। इसके बाद उस चूंडावत वीर (सालुंब्रासरदार) ने अमरसिंहका दा-हिना हाथ पकड़कर सहसा उनको राजासनके नीचे उतार दिया और तीव्र तथा गम्भीर स्वरमें कहा—"सरदारो! जल्दी घोड़ोंपर सवार होकर प्रतापसिंहके पुत्र को कलङ्कसे बचाओ।" सरदारका ऐसा आचरण देखकर अमरसिंहको बड़ा क्रोध आया और 'राजद्रोही' तथा 'राजाका अपमान करनेवाला' कह कहकर वे बारम्बार उसका तिरस्कार करने लगे। समझदार चूंडावत सरदार इन तिरस्कारों से तनिक भी दुःखित नहीं हुआ, क्योंकि वह खूब जानता था कि कर्त्तव्यपालन करनेके लिये उसे ऐसा काम करना पड़ा; अतएव इसमें उसका क्या दोष था? वास्तवमें उसने अपने कर्त्तव्यका पालन किया। यदि वह ऐसा न करता तो अ-मरसिंहकी जो दुर्गति होती वह स्वयं समझी जा सकती है। उसके साथी सरदार उसकी यह कर्तव्यपरायणता देखकर बहुत सन्तुष्ट हुए। सबने सलाह करके राणा अमरसिंहसे घोड़ेपर सवार होनेको कहा। उनको अबतक क्रोध चढ़ा हुआ था। वह क्रोध वे शान्त न कर सके और उसका बदला न ले सके अतएव रोने लगे। किसी प्रकार उनके आंसू न थम्हे; पर थोड़ी दूर जानेके बाद उनका जी कुछ ठि-काने पर आया। मेवाड़के तेजस्वी सरदार लोग उनके चित्तके ठिकाने या बेठि-

हानि होनेकी कुछ परवा न कर दलबलके सहित पर्वतसे उतरने लगी। इस समय मेवाड़के जिस स्थानमें जगन्नाथजीका एक मन्दिर है उसी जगह पहुंचने पर अमरसिंहका भ्रम दूर हुआ। धीरे धीरे उनके ज्ञाननेत्र खुले; उस समय वे समझे कि दोष उन्हींका था। सोचते सोचते उनको अपने पिछले व्यवहार पर स्वयं बहुत दुःख हुआ और अपनेको उन्होंने धिक्कारा। तुरन्त ही मेवाड़की वर्तमान अवस्था की धुंधली छाया उनके हृदयरूपी दर्पणमें दिखाई दी; उन्होंने देखा कि प्रचण्ड शत्रु भयङ्कर रूप बनाये सिरहाने खड़े हैं। सीसोदीयकुलके जिस गौरवकी रक्षाके लिये राणा प्रतापसिंहने लम्बी मुद्दत तक घोर कष्ट सहा, वह गौरव आज मिटना चाहता है, यह सोचकर राणा अमरसिंह दुःखित हुए। वे समझ गये कि कर्त्तव्य-साधनमें त्रुटि करके उन्होंने बड़ा अन्याय किया; पर जो बात हो गई थी वह फिर पलटाई नहीं जा सकती थी; उस समय उत्साहके सिवा सङ्कट दूर करनेका दूसरा उपाय नहीं था। जो थोड़ीसी सेना उनकी सहायताके लिये जा रही थी उसमें बड़ा उत्साह था; इसपर यदि राणा अमरसिंह उत्साह दिखाते तब तो उसका उत्साह सौगुना बढ़ जाता। इस बात पर विचार करके अमरसिंहने अपने किये हुए अपराधके लिये सबसे क्षमा मांगी और मूंछें उमेठते हुए सालुम्ब्रासरदारसे कहा, "सरदारजी, आप सीसोदीयकुलके सच्चे हितकारी हैं; मुझे अज्ञाननिद्रासे जगाकर आपने सच्चे वीरपुरुषका काम किया; इसके लिये मैं आपका सदा कृतज्ञ रहूंगा। प्रतापसिंह संसारमें नहीं हैं, पर उनका पुत्र अभीतक जीवित है। चलिये, लड़ाईके मैदानमें शत्रुओंके सामने चलें; वहां आप देखेंगे कि अमरसिंह प्रतापसिंहका उपयुक्त पुत्र है या नहीं।" राणाका उत्साह देखकर सैनिक सरदार सामन्त सब अधिकतर उत्साहित हो गये। शत्रु उस समय देवीर नामक स्थानमें थे; राजपूतों ने वहां पहुंचकर उनपर आक्रमण किया। मिरजा खां (खानखानां) का भाई मुगलसेनाका अफसर था; राजपूतोंको अपनी ओर बढ़ते देखकर वह भी सामने आया। देवीरके पहाड़ी स्थानमें दोनों दलोंमें लड़ाई हुई। राजपूत सैनिक बड़ी वीरता दिखाने लगे। बहुत देरतक लड़ाई हुई; दोनों ओरके बहुतसे सिपाही मारे गये; पर शीघ्र किसीकी जीत या हारका निश्चय नहीं हो सका। दोपहर बीत गई। सूरज मध्याकाश छोड़कर धीरे धीरे पश्चिमकी ओर उतर रहा था; पर

उसकी गर्मी और तेजीमें जरा भी कमी नहीं हुई थी। मुगलोंकी तोपोंके विकट गर्जनके साथ छूटनेपर धुएँसे आकाश छिप गया; मानों प्रलयका अन्धकार छा गया। थोड़ी देरतक कुछ भी दिखाई नहीं दिया। युद्धनिपुण राजपूत उसी अन्धेरे और धुएँमें शत्रुओंकी ओर बड़ी तेजीसे बढ़े। उनको शत्रु रोक नहीं सके। आखिर मुगलोंकी हार हुई और वे भागे। उनके अधिकांश सैनिक राजपूतोंके हाथों मारे गये। इस प्रकार दिन भर घोर युद्ध करके राणा अमरसिंह बहुत बड़ी मुगलसेनापर विजयी हुए और सन्ध्याके समय गौरवके सहित अपने नगरको लौटे।

संवत् १६६४ (सन् १६०८ ई०) में प्रसिद्ध देवीर स्थानमें ऊपर लिखी लड़ाई हुई। जिन युद्धकुशल राजपूतोंकी अद्भुत वीरतासे मुसलमान सैनिक पराजित हुए उनमें राणा अमरसिंहके चचा कर्ण मुख्य थे। उन्हींके उद्योगसे इस लड़ाईमें जीत हुई। अस्तु, यद्यपि शत्रु हारे, पर उनका उत्साह कम नहीं हुआ; बल्कि हारनेसे उनका युद्धका चाव तथा जोश और भी बढ़ गया। एक वर्ष बाद, संवत् १६६५ की बसन्त ऋतुमें जहांगीरने फिर एक बड़ी सेना अब्दुल्लह नामक सेनापतिके अधीन करके भेजी। सिपहसालार अब्दुल्लह उस बहुत बड़ी सेनाको देखकर मनमें जीतकी पूरी आशा बांधे हुए अमरसिंह पर आक्रमण करनेके लिये चला; राणाजी भी उसका आक्रमण व्यर्थ करनेके लिये दलबलके सहित आगे बढ़े। रणपुर नामक पहाड़ी स्थानमें लड़ाई हुई। धीरे धीरे जोश बढ़ता गया। तेजस्वी राजपूतवीर स्वदेशप्रेममें मत्त होकर शत्रुओंकी सेना छिन्न भिन्न कर डालनेका उद्योग करने लगे। उनका उद्योग सफल हुआ। मुगलोंका व्यूह तोड़कर उनको मारते काटते हुए वे आगे बढ़े। प्राय: सब मुगल सैनिक मारे गये; बहुत थोड़े बचकर भाग सके। फाल्गुन मासकी सप्तमीको † यह लड़ाई हुई। वह दिन गिह्लोटकुलकी वीरताका एक प्रसिद्ध दिन हो गया। उस दिन गिह्लोटकुलकेसरी वीरवर बप्पा-रावलकी विजयपताका बहुत दिनोंके बाद एकबार फिर गोहारराज्यमें लहराती

† फारसीके इतिहास "फरिश्ता" में दूसरा समय लिखा है। उसमें लिखा है कि खुर्रमके युद्धके लिये रवाना होनेसे पहलेही उक्त लड़ाई हुई थी। नहीं कह सकते कि "फरिश्ता"का लिखना कहांतक ठीक है।

हुई दिखाई दी। जिन वीरोंने स्वदेशके हितके लिये उस दिन लड़कर प्राण दिये उनके नाम स्वदेशप्रेमियोंकी पवित्र सूचीमें अवश्य स्थान पानेके योग्य हैं ॐ।

मेवाड़की अन्य पुण्यस्थलोंकी भांति देवीर और रणपुर भी पवित्र माने जाते हैं। इन दोनों स्थानोंमें पराजित होकर बादशाह जहांगीर बहुत शङ्कित हुआ। वह नहीं समझ सका कि किस तरह थोड़ेसे राजपूतोंने उसकी बड़ी बड़ी सेनाओंको लड़ाईमें हरा दिया; पर हारकर वह निरुत्साह नहीं हुआ। अपनी सेनाओंकी हारपर वह ज्यों ज्यों विचार करता गया त्यों त्यों उसका क्रोध बढ़ता गया। इस बार उसने एक बहुतही बड़ी सेना भेजनेका इरादा किया और यह सेना भेजनेसे पहले वह एक दूसरे उपायसे राणा अमरसिंहकी शक्ति नष्ट करनेका बन्दोबस्त करने लगा। इस उपायका वृत्तान्त पढ़नेसे मालूम होगा कि जहांगीर हिन्दुओंका सिद्धान्त जानता था। पर उसकी चाल सफल नहीं हुई। अमरसिंहकी सहायता और बल नाश करनेके लिये उसने एक और राजपूतको चित्तौड़में "राणा"के नामसे प्रसिद्ध किया; अर्थात् उसका अभिषेक किया। उस राजपूतका नाम सागरजी था। सागरजीका कुछ हाल इससे पहले भी लिखा जा चुका है। इस दुष्टने अकबरका पक्ष लेकर सीसोदीयकुलको बदनाम किया था। जहांगीरने अपने हाथोंसे इसका अभिषेक कर इसे राजसी वस्त्र पिन्हाये और खड्ग इसके हाथमें दिया। इसके बाद यह नवीन राणा मुगल सैनिकोंके साथ दुर्दशाग्रस्त चित्तौड़राज्यका भोग करने चला। यद्यपि मुसलमानोंके आक्रमणोंसे चित्तौड़का पूर्व सौन्दर्य एक प्रकार बिलकुल नष्ट हो गया था, तौभी जो कुछ बचा था वह भी कम नहीं था। सूर्यकी अन्तिम किरणोंकी तरह चित्तौड़का जो क्षीण गौरव बचा हुआ था उसीका रानी एलिजाबेथके भेजे हुए इङ्गलैण्डीय दूत सर टामस रोने एक पत्र में जो वर्णन लिखा है उसे पढ़कर आश्चर्य होता है §।

ॐ उनके नाम ये हैं,—देवगढ़के दूदी सङ्गावत, नारायणदास, सूर्यमल्ल, ऐश कर्ण—ये सीसोदीय और प्रथम श्रेणीके सरदार थे। शक्तावतसरदार भानुसिंहका पुत्र पूरणमल; राठौर हरिदास, सादरीके झाला भूपति; कहीरदास काछवाहे; बेदलाके चौहान केशवदास; मुकुन्ददास राठौर और जयमलोट।

§ सर टामसके पत्रका अनुवाद—"चित्तौड़ एक प्राचीन नगर है। एक कठिन

सागरजी चित्तौड़की गद्दीपर बैठा; दुर्दशाग्रस्त चित्तौड़में एक प्रकारकी शोभा दिखाई दी; पर जहांगीरने जिस आशासे उसे गद्दी दिलाई वह सफल नहीं हुई; क्योंकि मेवाड़वासियोंने राणा अमरसिंहका पक्ष नहीं छोड़ा; कोई सागरजीको देखने भी नहीं गया। बड़े कष्ट और दुःखमें किसी तरह सात वर्ष तक वह चित्तौड़का अधिकारी रहा। अपनी दुर्दशा देख देखकर वह आपही शोक करता। गद्दी मिलने ही से क्या हुआ? बात बातमें उसपर लोग घृणा प्रकट करते थे और सभी उससे रुष्ट रहते थे। उसमें निजकी कुछ भी सामर्थ्य नहीं थी; न स्वतन्त्रता थी न स्वाधीनता थी। बादशाहकी कृपासे उसे गद्दी मिली थी अतएव उसे उसका दबाव मानना पड़ता था। चित्तौड़पर उसका अधिकार नाम मात्रको था। सदा चिन्ता उसे घेरे रहती; कभी सुख न मिलता। वह कभी स्थिर न रह सकता। चित्तौड़की जो वस्तु देखता वही उसे दुःखदायिनी मालूम होती। मारे चिन्ताके वह घबरा गया; अपनी कमजोरी और अपने राजसम्मानको बारबार धिक्कारने लगा। जब अन्दर बैठे बैठे उसका जी घबराता तब वह महलोंकी छतों पर चला

चिपटे पर्वतके ऊपर बसा है। चारों ओर दस मील दीवारें हैं। अबतक यहां सौसे अधिक देवालय और बहुत सुन्दर महलात देख पड़ते हैं। ये सब यद्यपि टूट फूट गये हैं, पर इनकी प्राचीन सुन्दरता नष्ट नहीं हुई है। नक्काशीदार पत्थरके असंख्य सुन्दर सुन्दर स्तम्भ सिलसिलेवार खड़े हैं। देखनेसे अंग्रेजोंको जो अनुमान होता है उससे निश्चय होता है कि यहां कमसे कम पत्थरके लाख मकान हैं। पहाड़के नीचेसे नगरमें जानेके लिये सीढ़ियोंका केवल एक सिलसिला है। वह पहाड़ काटकर बनाया गया है। सीढ़ियोंका सिलसिला तै करते समय चार फाटक मिलते हैं। चित्तौड़के वर्त्तमान निवासियोंमें जूम और वहिम तथा जङ्गली पक्षी पशु आदि मुख्य हैं। उन्नतिके समय चित्तौड़की जो अवस्था होगी उसकी छाया इस गिरी दशामें भी देख पड़ती है। भारतवर्षके एक 'राणा' से अकबर बादशाहने इसे जीता था। वह राणा और उसके साथी उसी समयसे शहर छोड़ पहाड़ोंमें जा बसे थे। बहुत दिनोंके घेरेके कारण नगरनिवासी भूखों मरने लगे; तब अकबर यह नगर हस्तगत कर सका। यदि ऐसी घटना न होती तो वह कभी चित्तौड़ नगर न ले सकता।"

जाता; पर वहां भी उसे शान्ति न मिलती । छतों पर जाते ही उसका दुःख और भी बढ़ जाता । जब उस ऊँचाईसे वह चित्तोड़के गौरवसूचक स्तम्भोंको देखता तब पागलसा हो जाता; सारा संसार उसे सुनसान और अन्धेरा जान पड़ने लगता। उसके पूर्वजोंने हिन्दूविद्वेषी शत्रुओंपर विजय प्राप्त करके इन गौरवस्तम्भोंको बनवाया था; इनको रक्षाके लिये अनेकोंने अपने प्राण दिये थे; पर अब यह उन स्तम्भोंको कलङ्कित कर बड़े बूढ़ोंको पवित्र कीर्त्तिमें बट्टा लगानेका उद्योग कर रहा था ! यह क्या कम दुःखकी बात थी ? इसी दुःखमें रात दिन अभागी सागरजीका जी जला करता । वह जिस ओर आंखें उठाकर देखता उसी ओर उसे पूर्वजोंको क्रोधयुक्त लाल लाल आंखें दिखाई देतीं; जहां जाता वहीं उनकी कटे सिर पैरोंके नीचे देख पड़ते । ऐसे डरावने दृश्योंने उसे बहुत घबरा दिया। भट्टग्रन्थोंमें लिखा है कि एक दिन रातके समय चिन्ता करते करते उसने देखा कि भैरवकी बहुत बड़ी मूर्त्ति सामने आकर कर्कश स्वरमें कह रही है कि "दुष्ट ! राजपूताधम ! यहांसे चला जा ।" इसके बादही अपने भतीजे राणा अमरसिंहको गद्दी सौंपकर वह कन्दहार चला गया । कुछ दिन बाद वह जहांगीरकी दरबारमें गया । उसने इसे बहुत भला बुरा कहा जिसका इसे इतना रञ्ज हुआ कि सबके सामने ही हृदयमें छुरी मारकर इसने अपने प्राण दे दिये । इस प्रकार उसका अन्त हुआ * और संसारका एक बोझ हलका हुआ ।

* जहांगीरके समय महावतखां एक बहुत प्रसिद्ध सेनापति हो गया है । वह इसी सागरजीका पुत्र था और हिन्दूसे मुसलमान हो गया था ।

गंगाप्रसाद-ग्रन्थावली संख्या ४० (घ)

राजस्थानका इतिहास ।

(चौथा भाग)

अर्थात् कर्नल जीम्स् टाड प्रणीत "अनल्स् एण्ड एण्टीक्विटीज़
आफ राजस्थान एण्ड वेष्टर्न राजपूत ष्टेट्स्" नामक
अंग्रेजी ग्रन्थ

भारतजीवन-सम्पादक

बाबू गङ्गाप्रसाद गुप्त द्वारा अनुवादित ।

जिसमें

अनुवादकने अंगरेजी, फ़ारसी, संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, बङ्गला,
मरहठी और गुजरातीकी पुस्तकों तथा "एशियाटिक
रिसर्चेजकी" सहायतासे स्थान स्थान पर
टिप्पणियां लगाई हैं ।

इस ग्रन्थको "भारतजीवन" के अध्यक्ष बाबू रामकृष्ण वर्म्माने
निज भारतजीवन यन्त्रालयमें छापकर प्रकाशित किया
और उन्हींको इसका पूर्ण अधिकार भी है ।

काशी ।

भारतजीवन यन्त्रालयमें मुद्रित ।

दिसम्बर सन् १८०६ ई० ।

प्रथम बार १०००]

[मूल्य आठ आना ।

(२)

अमरसिंहने अपने पूर्वजोंकी पवित्र भूमि चित्तौड़पुरी पुन: पाई; पर उनके पास सहायता नहीं थी; ऐसी अवस्था में वे क्योंकर उसकी रक्षा कर सकते थे? अस्तु, चित्तौड़ पाकर उन्होंने जो आनन्द पाया वह थोड़े ही दिनोंके बाद जाता रहा और उसके साथ साथ अमूल्य स्वाधीनता भी सदाके लिये चली गई। यदि राणाजी चित्तौड़की अधिक चाह न करते, यदि गिह्लोट वीरोंके पुराने नियम के अनुसार सङ्कटके समय चित्तौड़ छोड़कर दुर्गम पहाड़ी स्थानोंमें चले जाते और वहींसे शत्रुओंपर आक्रमण करते, तो कदाचित् स्वाधीनता लोप न होती और सब कुछ खोकर भी अपने पिताकी तरह वे पूर्ण गौरवके साथ जीवनके अन्त समयतक रहते। पर वैसा नहीं हुआ। दूरदर्शी स्वर्गीय प्रतापसिंहका भविष्य-दर्शन शीघ्र सफल हो गया। बहुत जल्द गिह्लोटकुलकी अमूल्य स्वाधीनता चली गई! चित्तौड़ नगर पुन: पाकर राणा अमरसिंहने मेवाड़के अस्सी दुर्गों और नगरों पर अधिकार किया; उनमें अन्तला दुर्ग जिस प्रकार उनको मिला उसका हाल यहां पर लिख देना बहुत आवश्यक है; इसलिये हम उसे लिखते हैं। उक्त दुर्ग पर अमरसिंहका अधिकार होनेके समय मेवाड़के दो माननीय सामन्त सम्प्रदायोंमें ऐसा झगड़ा हो गया जैसा और कभी नहीं हुआ।

जहांगीरकी तीसरी चढ़ाईका समाचार पाकर राणा अमरसिंह यथासम्भव सेना इकट्ठी करने लगे; परन्तु मुगलोंके आनेमें देर देखकर उन्होंने उनके अधिकारमें गये हुए और कई दुर्गों और नगरोंके छीननेका विचार किया। जब सेना के कूच करनेकी सब तैयारियां हो चुकीं तब चूंडावतों और शक्तावतोंमें इस बात पर बड़ा झगड़ा हुआ कि सैन्यदलके सम्मुख भागकी रक्षाका भार कौन ले। चूंडावत बड़े थे; अबतक वे ही यह सम्मान पाते आये थे; पर अब शक्तावत अपने बहुत बड़े पराक्रमके भरोसे "हिरोल" * के परिचालित करनेमें अपना अधिकार जतानेका उद्योग करने लगे। राणाजी बड़े विचारमें पड़े। वे कुछ स्थिर न कर सके कि किसको यह अधिकार दिया जावे। एक दलको सम्मानित करने और दूसरेको न करनेसे दूसरा अवश्य ही बिगड़ जाता। इस समय दोनों सम्प्र-

* सेनाके सम्मुख भागका नाम "हिरोल" है।

दारोंकी बात रखे बिना काम चल नहीं सकता था। राणा अमरसिंहने बहुत देर तक विचार किया और मन्त्रियोंसे सलाह पूछी; पर कुछ निश्चय न हुआ। उनको चुप देखकर अन्तमें दोनों झगड़ालू सामन्तोंने लड़कर फैसला करना चाहा। इतनेहीमें एक उपाय सोचकर राणा अमरसिंह बोल उठे—"जो दल पहले अन्तला दुर्गमें प्रवेश कर सकेगा वही "हिरोल" की रक्षाका भार पावेगा।" राणाजी की यह बात सुनते ही सब तर्क वितर्क छोड़कर चूंडावत और शक्तावत वीर अन्तलाकी ओर चले।

राजधानीसे नौ कोस पूर्व ओर अन्तला दुर्ग था। वह ऊँची भूमिके ऊपर था। चारों ओर पत्थरकी दीवारें थीं। दीवारके ऊपर बीच बीचमें बड़े बड़े गोल गुम्बद थे जिनमें दुर्गकी रक्षाका समान रहता था। दीवारके नीचे एक छोटी नदी बहती थी। दुर्गके बीचमें वहांके रक्षकका भवन था; उसके चारों ओर भी खाई थी। दुर्गके अन्दर जानेके लिये केवल एक फाटक था †।

सवेरा होनेसे पहले ही दोनों प्रतिद्वन्द्वी सामन्त अन्तलाकी ओर बढ़े। अन्तला पर मुसलमानोंका अधिकार था; दोनों वीर सामन्तोंमेंसे आज जो उस अधिकारीको मारकर अन्तलामें प्रवेश करता उसीका मान रहता और वही मेवाड़की सेनाके सम्मुख भागकी सरदारी करने पाता। दोनों दलवाले बड़े उत्साहमें भरे थे; भट्टकवि वीणाके साथ स्वर साधकर उनके मङ्गलगीत गा रहे थे; राजपूत सुन्दरियां उनके स्वरोंमें अपने सुरीले स्वर मिलाकर उनका उत्साह दुगना कर रही थीं।

सूर्य भगवान् निकल आये; वृक्षों और पर्वतोंकी चोटियोंपर सुनहरी धूप दिखाई दी; ऐसे समयमें शक्तावत सैनिक अन्तलाके द्वारपर पहुँचे और यकायक उन्होंने शत्रुओं पर आक्रमण किया। पर शत्रु भी उनका अभिप्राय समझ बहुत शीघ्र तैयार होकर आ पहुंचे। इधर चूंडावत एक भूलभुलैया पहाड़ी मार्गमें रास्ता भूलकर इधर उधर भटक रहे थे; इतनेमें उनको एक चरवाहा मिला जो ढोर चरा रहा था। उसने उनको अन्तला दुर्गका रास्ता बतला दिया। बुद्धिमान् चूंडावत

† टाड साहब लिखते हैं कि दुर्ग इस समय टूटफूट गया है; केवल दीवार और कुछ इमारतें रह गई हैं।